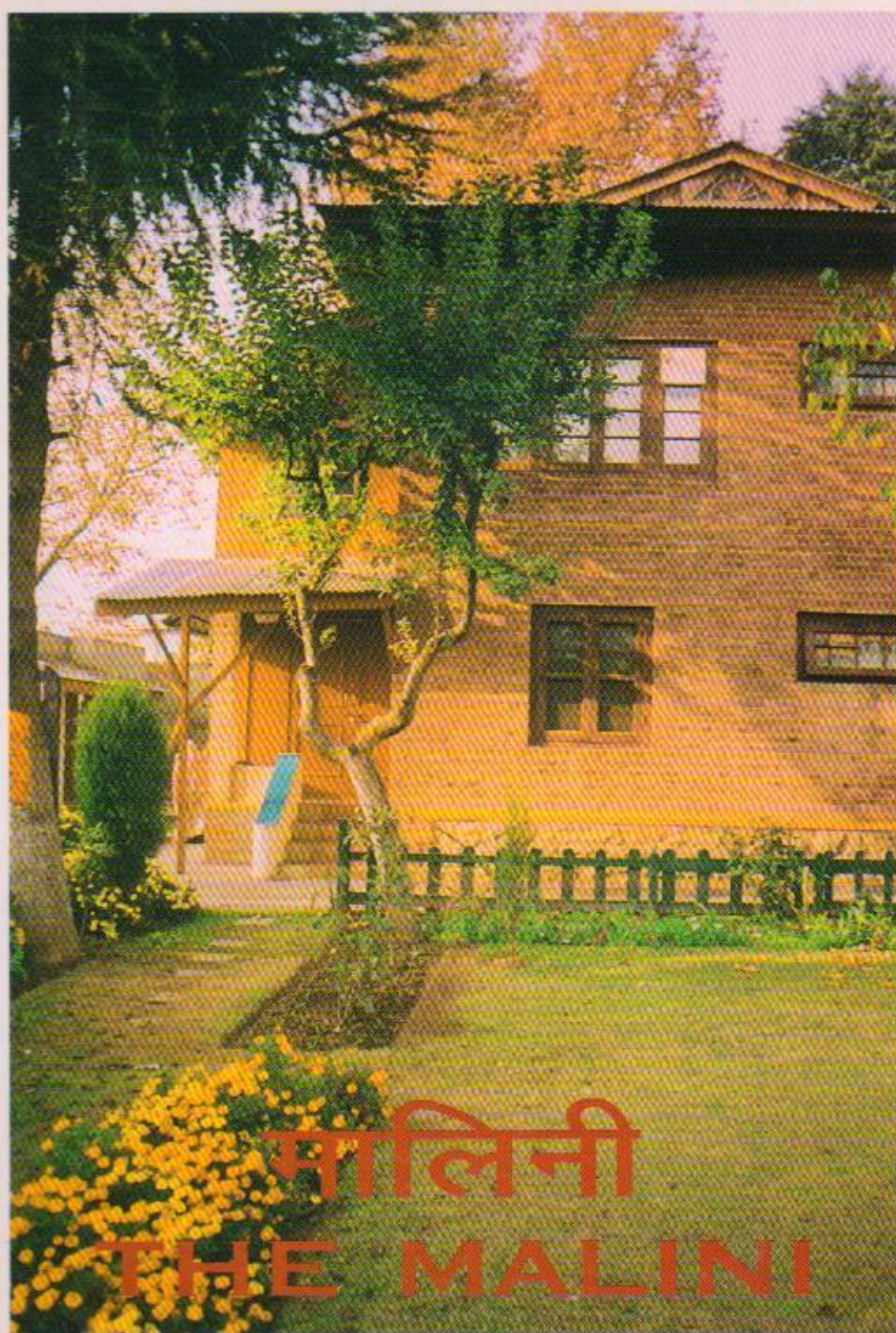


JULY, 2003



ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR



मालिनी THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी॥

*Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union
with her all the treatises of non-dualistic
order achieve the nature of divine potency.*

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :

Sri Inderkrishan Raina

(Secretary/Trustee)

Sri Samvit Prakash Dhar

Sri Brijnath Kaul

Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :

Sushri Prabhadevi

Prof. Nilakanth Gurtoo

Prof. Makhanlal Kukiloo

Sri Somnath Saproo

Sri Brijmohan

(I.A.S. Retd.) Co-ordination

Publishers :

Ishwar Ashram Trust

Ishber (Nishat), Srinagar

Kashmir.

Head Office :

Ishwar Ashram

Ishber (Nishat), Srinagar

Kashmir.

Administrative Office :

Ishwar Ashram Bhawan

2-Mohinder Nagar

Canal Road

Jammu Tawi - 180 016

Tel.: 2501199, 555755

Delhi Office :

Ishwar Ashram Bhawan

R-5/D Pocket, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044

Tel.: 26958308, 26974977

Telefax: 26943307

July, 2003

Price: Rs. 25.00

Yearly subscription: Rs. 100.00

© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust

by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 2328-1568, 2327-1568

विषय सूची : Contents

संपादक की लेखनी से		4
01. Śiva Sūtras	Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa joo Mahārāja	6
02. Universal Forces	Dr. B. N. Pandita	13
03. The Soul of Silence	Swami Tapovan Maharaj	17
04. अतीतमंथन	ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज का वचनामृत	18
05. भक्ति का तात्त्विक स्वरूप	सुश्रीप्रभादेवी	25
06. स्वरूप-अनुसन्धान-स्तुतिः	आद्यशंकराचार्य	27
07. काश्मीर अद्वैत शैव दर्शन और विश्वात्मभाव	डा० जागीर सिंह	30
08. नमोः नमः सद्गुरुपादुकाभ्याम्	प्रो० मखनलाल कुकिलू	35
09. From Ashram Desk	Administrative Office	37

संपादक की लेखनी से

श्री गुरुपूर्णिमा के पावन अवसर पर मालिनी का प्रस्तुत अंक सहृदय पाठकों के समक्ष रखकर हमें अपार प्रसन्नता हो रही है। सद्गुरु की महिमा का बखान करने वाली इस पूर्ण तिथि पर इस सत्य का विवेचन करें कि पूर्ण सत्य के प्रतिपादक शास्त्र और गुरु ही सत्शास्त्र और सद्गुरु हैं। अतः साधक का चित्त दृढ़ संस्कार के कारण उस प्रकार के शास्त्र और गुरु के प्रति आस्थावान् होने पर ही भगवत् कृपा से सत्तर्क या परामर्शज्ञान का अधिकारी हो सकता है। उसमें सार असार ज्ञान का उदय होता है, शुद्धविद्या के प्रभाव से पवित्रताप्राप्ति और निर्बाध सत्पथप्राप्ति का सामर्थ्य उत्पन्न होता है। बाह्यदीक्षा और बाह्यअभिषेक की आवश्यकता नहीं रहती। वह स्वयं संवित्ति देवियों द्वारा दीक्षित होता है। ब्रह्मानन्दं परमसुखदं कहकर जिसे नमस्कार किया जाता है, तत् पद का प्रदर्शक कहते हुए ज्ञानांजनशलाका के द्वारा अज्ञानतिमिरान्ध के ज्ञान चक्षु खोलने वाला जिसे बताया है वह गुरुदेह में प्रतिष्ठित ईश्वर अपनी क्रिया शक्ति द्वारा जीव में पशुत्व मिटाकर सर्वज्ञत्व और सर्वकर्तृत्व से उसे विभोर कर देता है। कहा भी है कि—

दर्शनात् स्पर्शनात् शब्दात् कृपया शिष्यदेहके।

जनयेत् यः समावेशं शाम्भवं स हि देशिकः॥

अर्थात् जो दयार्द्र होकर दर्शन, स्पर्शन या शब्द के द्वारा शिष्य के देह में शिवभाव का आवेश उत्पन्न करा सकते हैं वे ही देशिक या गुरु हैं। षट् चक्र भेदन करके ब्रह्मरंध्र में परशिव के साथ प्रबुद्ध होकर कुण्डलिनी जब जा मिलती है तभी यह आवेश होता है। सत्यसंकल्प गुरु केवल एक बार कृपासिक्त दृष्टिपात करके इस महान् कार्य का सम्पादन करते हैं। फिर योग्य शिष्य का उद्धार करना और अयोग्य शिष्य को योग्य बनाकर उद्धार करना ही गुरु का कार्य है। कहा है कि—

तत् तत् विवेक वैराग्य ज्ञानविज्ञान युक्तिभिः

श्रीगुरुः प्रापयत्येव अपद्मं अपि पद्मताम्

प्रापय्य पद्मतामेनं प्रबोधयति तत्क्षणात्॥

अर्थात् आदरणीय सद्गुरु विवेक वैराग्यपूर्ण ज्ञानविज्ञान की युक्तियों से अपद्म को भी कमलरूप में परिणत कर देते हैं। फिर पद्मत्व पद पर आसीन करके क्षणमात्र में उसे जगा देते हैं। अर्थात् श्री गुरुरूपी सूर्य अयोग्य को योग्य बनाकर प्रबुद्ध बना देते हैं। सद्गुरु स्वयं

परमेश्वर हैं। वे ही परमशिव हैं। वे ही स्वातंत्र्यशक्तिमय हैं। पंचकृत्यकारित्व उनका धर्म है। अतः सारी धर्मनीतियां जिस सद्गुरु दीक्षा पर अवलम्बित हैं, उस प्रकाश से प्रकाशित कर्म मार्ग पर सदा समाहित हो हम चलें, आज की इस गुरुपूर्णिमा पर जीवन की उद्देश्यसिद्धि के लिए हमारा यही दृढसंकल्प हो।

जय गुरुदेव !

ईश्वराश्रम परिवार से सम्बन्धित साधक वर्ग माननीय उदारदानी भक्तजन यह पढ़कर प्रसन्न होंगे कि सरिता विहार दिल्ली स्थित ईश्वराश्रम भवन का निर्माण कार्य अन्तिम चरण में है, आशा है कि सभी भक्तजनों के सहयोग से श्रावणपूर्णिमा पर इसके विधिवत् उद्घाटन की संभावना है। यह उल्लेखनीय है कि सद्गुरु महाराज की संगमरमर की भव्य मूर्ति का निर्माण कार्य भी कुशल व विख्यात शिल्पियों द्वारा शीघ्र ही आरंभ होगा और दक्षहस्त कला प्रेमियों की कला का वह एक सुन्दर नमूना होगा ऐसी पूर्ण आशा है। हमारे दिल्ली ईश्वराश्रम भवन के संयोजक श्री अवतार कृष्ण गंजू इस महनीय कार्य का निरीक्षण स्वयं करके समय समय पर सभी भक्तजनों को प्रगति का ब्यौरा प्रस्तुत करके आनन्दित करेंगे। गुरु परिवार के उदार चित्तवाले कई दानियों ने इस कार्य के लिए अलग धनराशि दान की है उनका इस विशेष कार्य के लिए दिया हुआ अनुदान इसी कार्य पर लगाया जायेगा। उन्हें इस बात के लिए निश्चिन्त रहना चाहिए। जिन उदार दानियों को इस गुरु मूर्ति निर्माण कार्य के लिए अपनी भावना के अनुसार जो कुछ अर्पण करना होगा वे यथाशक्ति वह अर्पण कर सकते हैं।

ईश्वर आश्रम ट्रस्ट सारे शिष्यों और भक्तजनों की हार्दिक सहानुभूति और आर्थिक अनुदान के लिए आभारी है।

जय गुरुदेव

गुरुपूर्णिमा 13 जुलाई 2003

— प्रो. मखनलाल कुकिलू

ŚIVA SŪTRAS

Vimarśinī Sanskrit Commentary of Śrī Kṣemarāja

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa joo Māharāja

(Continued from last issue)

तदाह—

मोहजयादनन्ताभोगात्सहजविद्याजयः॥ ७॥

(Mohajayādanantābhogātsahajavidyājayah)

By obtaining victory over such an illusion of cosmic powers and by enjoying the state of limitless being, the pure and supreme knowledge manifests.

मोहस्य— अख्यात्यात्मक समनान्तपाशात्मनो मायायाः, जयाद्— अभिभवात्।
कीदृशात् ? अनन्तः—संस्कार प्रशमपर्यन्तः आभोगो— विस्तारो यस्य तादृशात्
वेदनानादिधर्मस्य

इत्यादिना निरूपितरूपायाः सहजविद्याया जयो लाभो भवति आणवोपायस्यापि
शाक्तोपायपर्यवसानात् इति उक्तत्वात्।

तथा चश्रीस्वच्छन्दे

समनान्तं वरारोहे पाशजालमनन्तकम्।

इत्युपक्रम्य

पाशावलोकनं त्यक्त्वा स्वरूपालोकनं हि यत्।

आत्मव्याप्तिर्भवत्येषा शिवव्याप्तिस्ततोऽन्यथा॥

सार्वज्ञ्यादि गुणा येऽर्था व्यापकान्भावयेत् यदा।

शिवव्याप्तिर्भवत्येषा चैतन्ये हेतुरूपिणी॥

इति ग्रन्थेन आत्मव्याप्त्यन्तस्य मोहस्य जयात् उन्मना शिवव्याप्त्यात्मनः
सहजविद्यायाः प्राप्तिरुक्ता। यदुक्तं तत्रैव

आत्मतत्त्वं ततस्त्यक्त्वा विद्यातत्त्वे नियोजयेत्।

उन्मना सातु विज्ञेया मनः सकल्प उच्यते॥

संकल्पात्क्रमतो ज्ञानमुन्मनं युगपत्स्थितम्।

तस्मात् सा च परा विद्या यस्मादन्या न विद्यते॥

वेदनानादिधर्मस्य परमात्मत्वबोधना।

वर्जनापरमात्मत्वे तस्मात् विद्येति चोच्यते॥

तत्रस्थो व्यञ्जयेत् तेजः परं परमकारणम्॥ इति॥

After conquering or surpassing the field of illusion (māyā) it does not get subsided until the last least impressions are removed.

मोहस्य अख्यात्यात्मक समनान्त पाशात्मनो मायायाः - the impressions and experiences of all the differentiated universe is मोह, जयात्-अभिभवात् - when this illusion is conquered and subsided, अनन्तः - limitless, संस्कार प्रशमनपर्यन्तः- when last least impression of this illusion is destroyed, आभोगो विस्तारो यस्य तादृशात् - expansion of impressions of illusion (moha) वेदनानादि धर्मस्य - then comes pure knowledge when eternal aspects get revealed, इत्यादिना- etc. by this, निरूपित रूपायाः explained way, सहजविद्यायाः जयो लाभो भवति - you get victory when this kind of pure knowledge of consciousness is felt आणवोपायस्यापि शाक्तोपाय पर्यवसानात् इत्युक्तत्वात्- hence the conclusion is here that one is capable of entering into शाम्भवोपाय through आणवोपाय after entering and completing शाक्तोपाय। तथा च श्रीस्वच्छन्दे as is said in svacchanda Tantra also:-

समनान्तं वरारोहे पाशजालमनन्तकम्- O Devi! upto समना (Samana is that state where the mind is completely destroyed with the exception of impressions because when impression is totally burnt to ashes, the impression of the ashes will remain) this collection of bondages is unlimited इत्युपक्रम्य- starting from this - पाशावलोकनं त्यक्त्वा स्वरूपावलोकनं हि यत् आत्मव्याप्तिर्भवत्येषा- you have to put aside experiencing all these bondages, bondages are just differentiated knowledge when you experience each and every object of world separated from God-consciousness that is पाश, स्वरूपावलोकनं- when you put your mind to pure God - consciousness, i.e. when you experience only self, this is known, आत्मव्याप्तिर्भवत्येषा- as pervasion of God-consciousness, शिव व्याप्तिस्ततोऽन्यथा- Śivavyāpti is separate from it, सार्वज्ञ्यादिगुणायोऽर्था व्यापकान् भावयेत् यदा, शिवव्याप्तिर्भवत्येषा चैतन्ये हेतुरूपिणी- when each and every object of universe is found or experienced completely filled with all knowledge, all action and all will like Śiva that is शिवव्याप्ति - pervasion of Śiva. This is the only way to be directed towards the kingdom of independent God-consciousness or the state of स्वातन्त्र्य। इतिग्रन्थेन - so this scripture, उक्ता - tells us, आत्मव्याप्त्यन्तस्य मोहस्य- that the pervasion of God-consciousness (आत्मव्याप्ति) is also an

illusion, जयात् - that must be overcome, उन्मना शिवव्याप्त्यात्मनः सहजविद्यायाः प्राप्ति - then you will be able to get the pure: knowledge which is beyond the mind, that is Śivavyāpti - the pervasion of universal God-consciousness यदुक्तं तत्रैव- this has been already explained in Svachchanda Tantra-

आत्मतत्त्वं ततस्त्यक्त्वा विद्या तत्त्वे नियोजयेत्। उन्मना सा तु विज्ञेया - After that when you are experiencing the abundance of bondages, throw it aside putting your consciousness in God-consciousness. After that you have to throw that also. Then you have to get rid of आत्मतत्त्व। Then you have to unite your consciousness in विद्या- the pure knowledge, there you will find उन्मना- where mind does not exist at all because, मनः संकल्प उच्यते - the mind is only the collection of differentiated knowledge संकल्पात् क्रमतो ज्ञानं उन्मनं युगपत् स्थितम्। तस्मात् सा च पराविद्या- pure or impure knowledge all are in the circle of mind. when you cross beyond the संकल्प of good and bad there is no difference in individual consciousness or God-consciousness. In fact when you go to the depth of it you will find that God-consciousness is as good as individual consciousness in which we are living. Our life is filled with individual consciousness while yogi's life is filled with God-consciousness and Paramayogi's life is filled with universal God-consciousness. This is the state of उन्मना universal consciousness. Individual God-consciousness is the state of मन and God-consciousness is the state of self and that self too is to be abandoned so this is the Supreme God-consciousness. यस्मादन्या न विद्यते- there is no better knowledge than this because it is विद्या। Now he defines what विद्या actually is -

वेदनानादिधर्मस्य- you have to know what is the eternal aspect of Lord Śiva, eternal knowledge, eternal action and eternal will. This aspect never get faded or lessened, परमात्मत्व बोधना- when you know where knowledge of that eternal aspect is held or where knowledge of supreme God-consciousness is also achieved, वर्जनात्परमात्मत्वे - when negation of universal God-consciousness is discarded away where universal God-consciousness is held तस्मात् विद्येति चोच्यते- that knowledge is called विद्या। तत्रस्थो- being established in that Supreme knowledge, व्यंजयेत्- will appear, तेजः- light of universal God-consciousness, परं परम कारणं - only cause of entering into

your real nature.

एवमयं आसादित सहजविद्यः- Now who has attained this kind of universal god-consciousness, to him-

जाग्रत् द्वितीयकरः ॥ ८ ॥

(Jāgrat dviṭīyakarah)

the state of wakefulness (Jāgrat) is another form of his real nature of consciousness.

लब्ध्वापि शुद्धविद्यां तदैकध्यव्याप्तौ जागरूकः - पूर्ण विमर्शात्मक स्वाहन्तापेक्षया यत् द्वितीयं इदन्ताविमृश्यं वेद्यावभासात्मकं जगत् तत् करो-रश्मिर्यस्य तथाविधो भवति। विश्वमस्य स्व दीधिति कल्पं स्फुरति इत्यर्थः।

लब्ध्वापि- after achieving the state of शुद्ध विद्यां- pure knowledge, तदैकध्यव्याप्तौ- oneness with that Supreme knowledge is pervaded by that yogi जागरूकः- he is always awake of his universal consciousness.

पूर्णविमर्शात्मक स्वाहन्तापेक्षया यत् द्वितीयं - so that state of wakefulness of yogi is second way of his establishment of being इदन्ताविमृश्यं वेद्यावभासात्मकं जगत् - the state of wakefulness is found in thisness because thisness is absorbed in universal God-consciousness, तत् करो-रश्मिर्यस्य तथाविधो भवति - the state of wakefulness is just another ray of his universal consciousness. विश्वमस्य स्वदीधितिकल्पं भवति - this whole universe is his own expansion. It is only the sparks of his own being. Wakefulness is not other than it's real nature. Wakefulness is another formation of universal consciousness. By the state of wakefulness you should not know only the state of wakefulness but the state of dreaming and sound sleep also. Those three states which are experienced in our daily life are not other than universal God consciousness for such a yogi. This जाग्रत् is expansion of universal consciousness in another formation. The divinity you get in yourself in the state of God-consciousness that divinity is found itself measured in wakeful, dreaming and sound sleep state. After achieving the state of pure knowledge oneness with that Supreme knowledge is pervaded by that yogi, as he is always aware of universal consciousness, that state of wakefulness of yogi is second way of his establishment of being. The state of wakefulness is not found in consciousness. It is found in thisness. There is not 'I' there is this in the state 'I' is found only is your being. That is another way of universal consciousness. The state of God consciousness

digests only consciousness but universal God-consciousness digests both this consciousness and I consciousness. So this whole objective world is for such a yogi another way of his God-consciousness. He finds this in another way to universal consciousness. Hence this whole universe for such a yogi, is his own expansion or his own spark.

यथोक्तं श्री विज्ञानभैरवे - As is said in Vijñānabhairava Tantra :-

यत्र यत्राक्षमार्गेण चैतन्यं व्यज्यते विभोः।

तस्य तन्मात्रधर्मित्वात् चिल्लयात् भरितात्मता॥

The universal God consciousness is experienced in each and every way of organic field (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) you find it there. For such a yogi it is existing in absence of universal God consciousness also, because in negation also it exists. Men not knowing universal God consciousness means that this universal consciousness exists there, because not knowing consciousness can not exist without that universal consciousness. So not knowing is also found in universe. Whatever is found in universe, is found in universal God-consciousness when that universal God consciousness is your own aspect then the main aspect i.e. universal God-consciousness is filled everywhere.

This is also said in Sarvamangala Śāstra:-

शक्तिस्तु शक्तिमांश्चैव पदार्थद्वयमुच्यते।

शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः॥ इति॥

Two aspects are found there in this universe, one is energy and another is the holder of that energy the holder of energy is Lord Śiva and his energies are found in each and every part of the universe. So this universe is the existence of energy and महेश्वर above is the holder of energy himself. Thus whatever we find in daily routine of life that is the energy of Lord Śiva. When you loose something you feel that something has lost, but that lessening is also found in that God-consciousness. When your consciousness becomes less day by day within your knowledge nothing is lost. If a madman knows he is mad he is not mad at all but when he is unaware of it then he is surely a mad. Similar is the state of a yogi also.

ईदृशश्चायं सर्वदा स्वस्वरूप विमर्शविष्टः-

such a yogi is always residing in his own real nature.

नर्तक आत्मा॥ ९॥

(nartaka ātmā)

For this the actor, who plays in the drama of universe, is his own self.

नृत्यति - अन्तर्विगूहित स्वस्वरूपावष्टम्भमूलं तत् तत् जागरादि नाना भूमिका प्रपञ्चं स्व परिस्पन्द लीलयैव स्वभित्तौ प्रकटयति इति नर्तकः- आत्मा। तदुक्तं श्री नैश्वासदेवीमहेश्वरनर्तकाख्ये सप्तम पटले देवीकृतस्तवे-

त्वमेकांशेनान्तरात्मा नर्तकः कोशरक्षिता। इति।

श्री भट्टनारायणेनापि

विसृष्टाशेष सद्बीजं गर्भं त्रैलोक्यनाटकम्।

प्रस्ताव्य हरं संहर्तुं त्वत्तः कोऽन्यः कविः क्षमः॥ इति॥

सर्वागमोपनिषदि श्री प्रत्यभिज्ञायाम्-

संसार नाट्यं प्रवर्तयिता सुप्ते जगति जागरूक एक एव परमेश्वरः॥ इति॥

The dancer in the field of universal drama is his own nature i.e. creation birth, joy depression, fear enjoyment. Whatever is experienced in your life that is dance and in that field of the drama the dancer is your own nature. The one who dances in the field of universal drama and is aware of it is always fine and elevated. Those who are not aware are not actors they are played in this drama. They experience joy, pain depression sadness etc.

नृत्यति अन्तर्विगूहित स्वस्वरूपावष्टम्भमूलं तत् जागरादि नानाभूमिका प्रपञ्चं स्वपरिस्पन्द लीलयैव स्वभित्तौ प्रकटयति इति नर्तकः आत्मा- so it is your own self of the universal consciousness which is infact a dancer, because he dances. What dancing means? The dancer is that who conceals his real nature of your being that is the way of dancing. For example when A. B. C. (Swami has quoted the name of some Mohd. Bhatt) is the real dancer and he appears in the form of Lord Krishna or a Lord Shiva or woman or as a silly person in a drama, so real state of his being is concealed and superficial formation is revealed. It is concealed for others not for him who knows he is Mohd. Bhatt at the time of assuming different forms he is aware of the self. Similarly Lord Śiva is dancer. He appears in differentiated forms of जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति but actually this is his play. It is not his real nature or action. Actually he is filled with the nature of being always in the field of universal God Consciousness. He diverts his universal consciousness in wakefulness but he has not become that. He appears in wakefulness, in dreamlike state or in sound sleep state and so on but actually it is his play. He has not become जाग्रत स्वप्न etc.

तदुक्तं श्री नैश्वासदेवीमहेश्वरनर्तकाख्ये सप्तम पटले देवी - कृते स्तवे- as is said

by Devi to Lord Śiva in Naiśvāsa Tantra's seventh chapter known as नर्तक the hymn is composed by Devi herself—

त्वमेकांशेना० - O Lord Śiva in one way you are actually residing in your own nature, but your coverings are different by one covering universal consciousness appears as wakefulness. By another way of covering it appears as the dreamlike state of the state of deep sleep. It is because of these coverings (कोश) this universal God-consciousness is not found.

भु श्री नारायणेनापि- Bhattnārāyana has also said in his work namely स्तवचिन्तामणि (stavacintāmani)

विसृष्टाशेषसद्बीजगर्भ - O Lord Śiva this form of whole universal existence is existing in your own self. So from you the universe has expanded out side from that seed which is residing in your real nature. You create three ways of drama, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। who else can do such acting just to create it and just to withdraw it again. This is the only way of your action of awareness.

सर्वागमोपनिषदि श्री प्रत्यभिज्ञायां- in the commentary of Śri Pratyabhijñā (the way of recognition) which is the secret of all Tantras, it is said:-

संसार नाट्य प्रवर्तयिता सुप्ते जगति जागरूकः एक एव परमेश्वरः- The creator of the drama of universe is only one in this universe filled with awareness in this unaware world you are unique who is actually wakeful in dreaming state.

(to be continued)

MALINI - Quarterly Magazine

Annual Subscription : Rs.100.00

Price Per Copy : Rs.25.00

Overseas Subscription : US\$25.00

All correspondence & subscription must be sent to the Administrative Office :

Ishwar Ashram Bhawan

2-Mohinder Nagar, Canal Road

Jammu Tawi - 180 002.

Tel. : 2553179, 2 555755

Information regarding printing & publishing, etc. can be had from Branch Office:

F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044

Phone : 26943307

Universal Forces

– Dr. B. N. Pandita

Kṣemarāja in his Pratibhijña Hradayam describes universal forces directing the movements of all beings and the whole insentient existence in accordance with the divine will of God. Such forces have been classified into four groups of deities under the group names as khecari (खेचरी) go cari (गोचरी) dikcari (दिक्चरी) and bhūcari (भूचरी) Gocari गोचरी rule over the internal senses of beings controlling and directing all their sensual activities with respect to inward objects made of ideas and concepts. As has been said in प्रत्यभिज्ञा हृदय (Pratibhijña Hradayam):-

भेदनिश्चयाभिमान विकल्पन प्रधानान्तः करणदेवी रूपेण गोचरीचक्रेण गोपिता
भेद निश्चयाद्यात्मक पारमार्थिक स्वरूपेण प्रकाशते।

Dikcaris have their hold on the functions of exterior senses of being which move on in their activities as some conscious entities. Such functions of these senses are in fact the activities of sense deities who as mentioned above, collect tasty objects from outward phenomena and offer them to the individual being in fact the Lord appearing in a finite form. The functions of senses are thus various types of worship offered by sense deities to God. That is the exact reality. But the Gocari (गोचरी) and Dikcari types of forces of the Lord keep such real nature of the functions of all the senses of a person concealed and hidden from his view, and consequently he feels that he is himself conducting all real functions through his senses. But a being who realises the exact reality about these things feels that he as an individual and plays the role of a mere spectator of all the functions of such senses being actually conducted by such deities known also as karṇadevis mentioned above. Bhūcaries have their authority on the external insentient existence. Such forces keep the exactly real monistic and pure nature of such existence hidden from the view of a finite soul and make it appear to him in its objective aspect, completely different from the subjective existence. Ignorant beings see it something different from them as well as from God. But the realised souls see everything as their own body. Bhucaris are thus responsible for the perpetuation of the incorrect views of worldly souls till the time of the rise of the right knowledge in them. The forces named खेचरी (khecaris) wield their authority on the कञ्चुक (kañcuka) tattvas

and keep all the finite beings bound by them as long as they do not develop the correct realisation about their real nature. All these four groups of female deities, representing special types of some powers of God, work as binding forces with respect to ignorant beings. But these very dieties, illumine the real nature of the exact reality of everything and every action to an asparent become thus the liberating forces when spiritual awakening dawns in him.

Many other Tantrā dieties have been said to be ruling our 'Bhuvanas below Māyā. There are eight Mahadevas who guard Māyā on eight sides. Below them is the place of three Mahadevas ruling over कला तत्त्व (kāla tatvaṣ). Nine Śāktis named Vāma (वामा) Jyesthā (ज्येष्ठा) Raudri (रौद्री) kālī (काली) etc. are the dieties ruling in the plane of impure vidyā. Below them are the Bhuvanas of certain preception in all ten in number. Eight Bhuvanas in राग तत्त्व (Raga tattva) are ruled over by eight वीरेश (Vīreśas). Below them is the place of ten Śivas ruling over ten Bhuvanas in the plane of काल तत्त्व (kāla tattvas). Ten more abodes lying in the field of नियति तत्त्व (Niyatitattva) are ruled by ten शंकर (Śamkaras). The list of all such deities have been given in "स्वच्छन्द तन्त्र" the concerned passages have been quoted by जयरथ in his commentary on Tantraloka. शर्वः भवः, पशुपतिः, ईशः, भीमः are the masters of the five तन्मात्र The भुवन of भद्रकाली (Bhadrakālī) has been placed above the one hundred Rudras bolding the universe. As is said शतरुद्रोर्ध्वतो भद्रकाल्या नीलप्रमं जयम्। (Tantralok 8th Akm-193) one hundred Rudras work under the directions of eleven chieftains among them and those are according to तन्त्रालोक, अनन्तः कपालिन् अग्निः, यमः, नैऋतः, बलः, शीघ्रः, निधीशः, विद्येशः, शम्भुः, वीरभद्रः। Their names given in Tantraloka follow the tradition revealed in Mālinivijaya. Svachchanda Tantra records another tradition in that regard and according to that their names are श्वेत, वैद्युत, कालाग्निः, महाकालः, विद्याधरः, रुद्रः विश्वभद्रः etc. it is said that विश्वभद्रः has his place over the upper limit of the universe. There is in addition a Rudra named दण्डपाणिः who pierces the whole ब्रह्माण्ड and creates a channel through it for the uplift of worldly adepts who proceed through it towards in attainment of liberation. Above him are the other lokas known in common Hindu belief as the seven lokas from भूलोक to सत्यलोक। seven Rudras are the masters of these lokas and they are भवः, शर्वः रुद्रः, भीमः, उग्रः, महादेव,

ईशानः, the names of these Rudras occur in यजुर्वेद also. These along with पशुपतिः are even now being worshipped by Brahmins in Kashmir and their names occur nearly in all kinds of manuals of worship, prevalent among them. In addition to such Tantric deities there are the puranic deities residing in and ruling over the atmosphere as well as igneous, watery and solid existence, which have been recognised as such in Tantraloka also. Semigods like गन्धर्वः, यक्षः etc. have been assigned places inside भूलोकः। Even the विद्याधर of the lowest categories have been placed there. Bhuva loka contains the places ruled by different types of maurutas like Pravāha, Avāha, and Parivāha etc. There are the regions of different types of clouds described mythologically. The important deities living in this second one of the seven lokas in their ascending order are विनायक, विद्याधर विशेष, सिद्ध, चारण, दिग्गज, गरुड़, गंगा, दक्ष, वसु, रुद्र, आदित्य etc. This loka is the place of atmosphere. Above it starts स्वःलोक and extends upto ध्रुवलोक the polestar. It is the abode of higher Gods. Aspirants who perform vedic Yajnas but do not develop the correct knowledge attain this loka and return to Bhuloka after enjoying there the fruits of their religious deeds. The fourth loka named महः is the abode of ऋषि, मुनि, सिद्ध etc. retired from their posts of authority. It is said in. तन्त्रालोक-

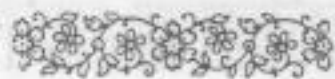
मार्कण्डाद्याः ऋषिमुनि सिद्धास्तत्र प्रतिष्ठिताः।

निवर्तिताधिकाराश्च देवा महति संस्थिताः॥

The fifth loka named जनः is the abode of साध्य, कपिल etc. They enjoy every facility there. Still higher saints like सनक etc. reside in the sixth loka named तपः। Prajāpatis like kasyapa, who are the direct descendents of Brahama, also reside in तपःलोक। The seventh loka named Satyaloka is subdivided into several regions. The three important regions in it are the abodes of Brahama, Vishnu, and Rudra. Practitioners of Vedic rites and upnisadic meditation attain Brahamloka. Those who approach the divine through the devotional paths of mental worship, reach the abode of Vishnu and live there. Such Śaivas who performing worship with devotion but who do not get regular दीक्षा from a Yogin attain Rudraloka to live there in a blissful state that is the division of Brahmanda as given in Tantra loka:- Admission for a lasting residence to such Bhuvanas contained in the Brahmanda can be attained by religiousness prescribed in different systems of Sādhnā. But the sādhanā presented in the Trika system and discussed in

Tantraloka is meant to lead to perfect liberation and not to the attainment of life in any superior abodes. The description of such abodes and the deities ruling over them is simply meant for objective meditation presented in the Bhuvanadhvan type of ānavyoga. An adept has to contemplate by means of deep imagination that the whole path of space containing all such bhuvanas, their residents and their master deities ruling there are contained inside the physical form and are to be merged into it by means of deep imagination. Such practice yields freedom from limitation imposed by the conception of space, mastery over such bhuvanas and realisation of one's infinite nature.

In addition to such Tantric and Pauranic deities some more deities are worshipped in the rituals of kula system adopted by the teachers of Trika system and discussed in Tantraloka. Many of such deities are the ancient teachers of kula system and their दूती: worshipped under code names these दूती: are worshipped in the siddha cakra in Kula ritual. Such दूती: both male and female receive worship in the मण्डलपूजा of the Trika ritual as well. Every male and female Tantric deity has his or her counter part belonging to the sex opposite to its own. Every Rudra, Śiva or Bhairava has therefore a Śakti and every Śakti or Devi has a Rudra or Bhairava. But the higher deities from the plane of महामाया to that of Śakti have only symbolic counter parts. Mantras and deities of higher aspect are kept out of the Kaula type of crude symbolism by saivas both in Kashmir and in the South. Mahākālī in her twelve aspects described poetically by Abhinavagupt in Kramastotra and discussed by him philosophically in Tantraloka is such a special deity in Saivism which is not known to other systems. It is pertinent to tell here that KĀLĪ is the name of the power of that absolute god head through which god conducts all the divine cosmic activities. She is conceived in the aspects of her activities of creation preservation, dissolution and the comprehensive manifestation with respect to known, knower and knowing प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय and is contemplated upon all such aspects and leads an adept to the correct realisation of the complete divinity of his self. Conception of KĀLĪ in the Śaktism of Bengal is quite different and sufficiently mythological in character, while that of the Trika system is highly philosophic in nature. KĀLĪ in Bengal is the deity to whom ritual worship is offered but in Kashmir Saivism she is approached by means of one of the highest methods of Yoga.



The Soul of Silence

— By Swami Tapovan Maharaj

Silence is Truth. Silence is Bliss. Silence is peace. And hence Silence is Atman. To live this Silence as such is the Goal. It is moksha. It is the end of the endless cycle of births and deaths. Sri Ramana Maharshi was an embodiment of such Silence. He was the Silence itself. Therefore he did not preach the Silence. Only when one comes back to the 'noisy' from the Silence, can one preach the Silence. How can the Silence preach Itself through Silence ? Nearly thirty-five or forty years ago, I had the good fortune of having the darshan of Maharshi at Tiruvannamalai when he was living there in a cave along with his mother and brother. One midday, a young Brahmachari at that time, I went up the Hill to the cave, saw the Maharshi and, placing a bunch of bananas at his feet, bowed and sat before him. At the same moment some monkeys jumped on to the scene, scrambled for the fruits and ran away with them. Maharshi looked lovingly into my face. That was all. He spoke but silence not a word passed between us. A supreme, dynamic and divine Silence prevailed. An hour passed by, all in Silence. He rose for his meals (bhiksha). I too rose from my seat, bowed again and walked down the Hill. The divine Silence sank deeper and deeper into me at each step ! Some one came running behind and pressed me to take some prasada. Thankfully I declined. I was full with the Silence. Maharshi called him back and advised him not to press me. Then I left the cave and walked away.

Maharshi was an idol of Peace and Silence. It is the first duty of all those who admire and follow him to seek after that Divine Silence. The enquiry into that Divine Silence is but the enquiry "Who am I ?" Oh, man ! Enquire and be immersed in that inner Silence. Do all works of this world to reach that goal, to attain that Divine silence. If you have already attained that Silence, do strive for loka sangraha (the salvation of the world) if you choose to do so. The ocean's surface dances in waves, laughs in sparkling foam, roars as its thunderous waves clap and clash ! And yet deep in its inner vaults it rests in eternal Silence and peace. With out such a divine and spiritual depth, the works and activities of this universe prove worthless and aimless.

"Works should be undertaken and pursued to take us ultimately to the workless Abode of Divine Silence and endless Peace." This is the secret doctrine of all our Vedas and ancient Scriptures.

Reproduced from The Mountain Path, January 1980.

Courtesy, Sh., K. L. Warikoo

अतीत मन्थन

ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज का वचनमृत

यह प्रसन्नता का विषय है कि 'मालिनी' के प्रस्तुत अंक से भक्तजनों के विशेष अनुरोध पर 'स्तुति चन्द्रिका' के अमूल्य श्लोकों को साधकों के रसास्वादन के लिए प्रकाशित किया जा रहा है। हमारा गुरु परिवार इस पुस्तक के नाम के साथ विशेष रूप से जुड़ा हुआ है। यह स्तोत्र पुस्तिका स्वनामधन्य सद्गुरु ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज ने बावन वर्ष पूर्व अपने भक्तों के आध्यात्मिक उद्धार के लिए प्रकाशित की थी। शैवशास्त्र के सुगन्धित व रमणीय पुष्पों को चुन चुनकर सद्गुरु महाराज ने एक ऐसी रमणीय वाटिका इस पुस्तिका के रूप में बनाई थी कि काल की लम्बी सीमा इस की महक और सौन्दर्य को घटाने में सफल न हो सकी। मालिनी में इस पुस्तिका के क्रमबद्ध प्रकाशन का अभिप्राय इतना ही है कि अधिक से अधिक संख्या में पाठक इस पुस्तिका के महत्व को समझें और हमारे सद्गुरु महाराज की अपने शिष्यवर्ग की आत्मिक उद्धार भावना की जागरूकता का भी परिचय प्राप्त कर सकें। ट्रस्ट को आशा है कि इस पुस्तिका के क्रमबद्ध प्रकाशन के पश्चात् शीघ्र ही जेब में रखने योग्य छोटी पुस्तिका के रूप में यह पुस्तिका प्रकाशित होगी जो एक सर्वोपयोगी संस्करण होगा। स्मरण रहे कि इस पुस्तिका के अन्त में शैवी सम्प्रदाय में प्रचलित महाश्री ब्राह्मी विद्या को भी सद्गुरु महाराज ने जोड़ा है जो एक अपने में अपूर्व है। यह शैवी ब्राह्मी विद्या प्रचलित ब्राह्मी विद्या से पूर्णतया भिन्न है और शैव संप्रदाय की अनन्य महत्ता को सूचित करती है। पन्द्रह वाक्यों में आचार्य अभिनवगुप्तपाद रचित यह ब्राह्मी विद्या सकला ब्रह्मविद्या कहलाती है पर यह निष्कला नाम से भी कही जाती है क्योंकि इसे आदि और अन्त में पञ्चाक्षर मन्त्र से संपुटित किया है। अतः सकला और निष्कला का समन्वय ही इस शैवी ब्राह्मी विद्या का उद्देश्य है।

यहां पञ्चाक्षर मन्त्र से तात्पर्य "नमः शिवायः" न होकर ऊँ ह्रीं ह्रूं फ्रें और नवात्मकवर्ण है। इस ब्राह्मी विद्या का अनन्त फल है और इसका मनन अथवा श्रावण मृत्युग्रस्त को मृत्युमुक्त करके यमपाशों की जकड़ से छुटकारा दिलाता है। इस ब्राह्मी विद्या का पाठ सदा करके अपने को सफल बनाना चाहिए। यह न समझना कि ब्राह्मी विद्या केवल मरने के समय ही मृतक के कान में पढ़ने की विधि है।

बावन वर्ष पूर्व प्रकाशित इस पुस्तिका का प्रकाशन श्रेय हमारे वरिष्ठ गुरुभाई तथा वर्तमान ईश्वर आश्रम ट्रस्ट के ट्रस्टी श्री संवित् प्रकाश दर को है। इन्होंने उस समय यहां दिल्ली के ही एक प्रकाशक के सहयोग से इस पुस्तिका का प्रकाशन यथासंभव

प्रकाशन सुविधाओं के अनुकूल किया था जो सराहनीय है। विभिन्न शैवी स्तोत्र ग्रन्थों से चुने गये ५१ श्लोकों की यह चयनिका हृदयावर्जक है। सद्गुरु महाराज के अभीष्ट देव भगवान् शंकर के श्लोकों की अधिकता का होना इसमें सर्वथा समुचित है क्योंकि ये शक्तिपातोन्मिषित शैवी सद्गुरु की शैवी साधना के उद्गार हैं। मालिनी के प्रस्तुत अंक से क्रमबद्ध रूप में इस चयनिका के स्तोत्र रत्न पाठकों के सामने रखे जायेंगे। आशा है कि पाठकवृन्द इन रत्नों की चमक दमक में न खोकर स्वरूप स्थिति में सुस्थित होंगे और परमानन्द लाभ से लाभान्वित होंगे। ऐसी दशा में हमारा यह प्रयास भी सफल होगा।

संपादक

सद्गुरुवे नमः

अगाधसंशयाम्भोधिसमुत्तरणतारिणीम्।

वन्दे विचित्रार्थपदां चित्रां तां गुरुभारतीम्॥ १॥

(अहं)	= मैं	अर्थ-	= अर्थों और
तां	= उस	पदाम्	= पदों वाली
अगाध-	= गहरे	चित्राम्	= अनूठी
संशय-	= सन्देहरूपी	गुरु-भारतीम्	= गुरुदेव की वाणी को
अम्भोधि-	= समुद्र के	वन्दे	= प्रणाम करता
समुत्तरण-	= पार ले जाने में		हूँ ॥ १॥
तारिणीम्	= नौका के समान		
विचित्र-	= विचित्र		

रहस्य संप्रदाय के आधार पर परमेश्वर की अनुग्राहिका शक्ति को वास्तव में गुरु-भारती कहते हैं, और इसी अनुग्राहिका शक्ति के फलस्वरूप, स्वरूप-साक्षात्कार के समय जिन अनेकानेक योग-सिद्धियों की प्राप्ति होती है- उनकी विचित्र अर्थों के साथ उपमा दी गई है। साथ ही पदों का तात्पर्य उन योग-भूमिकाओं से है जिनका अनुभव योगी-जन करते रहते हैं। यही अनुग्राहिका शक्ति भक्त के लिये संशयरूपी समुद्र से पार ले जाने में सफल नौका के समान है॥ १॥

सदसदनुग्रहनिग्रहगृहीतमुनिविग्रहो भगवान्।

सर्वासामुपनिषदां दुर्वासा जयति दैशिकः प्रथमः॥ २॥

सत्	= शुभ (तथा)	सर्वासां	= सारे
असत्-	= अशुभ रूपी	उपनिषदां	= उपनिषदों के
अनुग्रह-	= अनुग्रह (और)	प्रथमः	= आद्य
निग्रह-	= निग्रह से	दैशिकः	= उपदेशक

गृहीत-	= धारण किये हुए	भगवान्	= सर्व-ऐश्वर्य-संपन्न
मुनि-	= ऋषि के	दुर्वासा	= प्रभु दुर्वासा की
विग्रहः	= शरीर वाले	जयति	= जय हो॥ २॥

शैव सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर की पाँच शक्तियाँ हैं:- सृष्टि-शक्ति, स्थिति-शक्ति, संहार-शक्ति, निग्रह-शक्ति और अनुग्रह-शक्ति। इनमें से पहिली तीन शक्तियाँ प्राणियों के कर्मों का आश्रय लेकर ही अपना कार्य करती हैं; किन्तु निग्रह-शक्ति और अनुग्रह-शक्ति केवल शिव की स्वतन्त्र इच्छा से ही अपना कार्य करती है और जीवों के कर्मों का प्रभाव उन दो शक्तियों पर तनिक मात्र भी नहीं पड़ता है। अनुग्रह शक्ति के स्पर्श से जीव अपने स्वरूप का साक्षात्कार करने में असमर्थ बनता है और निग्रह-शक्ति से उसका पारमार्थिक स्वरूप आच्छादित हो जाता है। इन्हीं दो शक्तियों की ओर यहां संकेत हैं। ऋषि दुर्वासा इन दो शक्तियों से संपन्न थे॥ २॥

त्रैयम्बकाभिहितसन्ततिताम्रपर्णी सन्मौक्तिकप्रकरकांतिविशेषभाजः।

पूर्वे जयन्ति गुरवो गुरुशास्त्रसिन्धु कल्लोलकेलिकलनामलकर्णधाराः॥ ३॥

त्रैयम्बक-	= त्र्यम्बकनाथ की	गुरु-	= गहरे
	शाखा में	शास्त्रसिन्धु	= शास्त्र रूपी
अभिहित-	= कहे गये		समुद्र की
सन्तति	= सम्प्रदाय रूपी	कल्लोल-	= लहरों की
ताम्रपर्णी-	= ताम्रपर्णी नदी में	केलि-	= क्रीड़ा के
सत्-	= परमार्थ रूपी	कलना-	= रचने में
मौक्तिक-	= मोती के	अमल-	= निर्मल अर्थात्
प्रकर-	= समूह की		योग्य
कांतिविशेष-	= असामान्य	कर्णधाराः	= नाविक
	दीप्ति को	पूर्वे	= पिछले
भाजः	= धारण करने	गुरवः	= गुरुजनों की
	वाले	जयन्ति	= जय हो॥ ३॥

शैव शास्त्र, “त्र्यम्बक, आमर्दक, श्रीनाथ तथा अर्धत्र्यम्बक”— इन साढ़े तीन शाखाओं के द्वारा जगत् में अवतरित हुआ है। अद्वैतप्रधान शैव-शास्त्रों का सम्प्रदाय श्री त्र्यम्बकनाथ जी की शाखा में ही प्रकट हुआ है। त्र्यम्बकनाथ जी की शाखा में अवतरित पूर्व-गुरुजनों की स्तुति की ओर ही इस श्लोक में संकेत है॥ ३॥

जयति गुरुरेक एव श्रीश्रीकण्ठो भुवि प्रथितः।

तदपरमूर्तिर्भगवान् महेश्वरो भूतिराजश्च॥ ४॥

भुवि	= जगत् में	श्री	= मोक्ष-लक्ष्मी-
प्रथितः	= विख्यात		संपन्न

एक एव	=	अद्वितीय	श्रीकण्ठः	=	श्रीकण्ठनाथ
गुरुः	=	गुरुदेव	जयति	=	जयनशील हों
च	=	और	तथा	=	एवं
तत्-	=	उनके ही	भूतिराजः	=	श्री भूतिराज जी
अपरमूर्तिः	=	दूसरे रूप		=	की
भगवान्	=	भगवान्	(अपि)	=	भी
महेश्वरः	=	महेश्वर	(जयति)	=	जय हो ॥ ४ ॥

शास्त्रों का कथन है कि जब कलियुग के प्रादुर्भूत होने पर समस्त शैव शास्त्रों का संप्रदाय पूर्ण रूप से लुप्तप्राय हुआ था, तब भगवान् शङ्कर जी कैलाश पर्वत में श्रीकण्ठनाथ जी के रूप में स्वयं प्रकट हुए और उन्होंने ऋषि दुर्वास के द्वारा ही समस्त शैव शास्त्रों का संप्रदाय पुनः स्थापित करवाया। अस्तु; श्रीनाथ जी की भेदाभेदप्रधान शाखा में श्रीमान् महेश्वरनाथ जी हुए हैं और अर्धत्र्यम्बक शाखा में श्रीमान् भूतिराज जी विख्यात हुए हैं। इन्हीं तीन आचार्यों की ओर इस श्लोक में संकेत है ॥ ४ ॥

श्रीसोमानन्दबोधश्रीमदुत्पलविनिःसृताः।

जयन्ति संविदामोदसन्दर्भा दिक्प्रसर्पिणः॥ ५ ॥

श्रीसोमानन्द-	=	श्री सोमानन्द	दिक्	=	भिन्न-भिन्न
		जी के			दिशाओं में
बोध-	=	संप्रदाय से	प्रसर्पिणः	=	फैले हुए
श्रीमत्-	=	और श्रीमान्	संवित्-	=	ज्ञान रूपी
उत्पल-	=	उत्पलदेव जी से	आमोद-	=	सुगन्ध के
विनिःसृताः	=	निकले हुए	सन्दर्भाः	=	समूहों की
(च)	=	और	जयन्ति	=	जय हो ॥ ५ ॥

श्री सोमानन्द जी की वंशावली के विषय में कहा जाता है कि प्रारम्भ में समस्त शैवशास्त्र ऋषियों को कण्ठस्थ हुआ करते थे, इसी से वे अनुग्रहशक्तिशाली बने हुए थे। बाद में कलियुग का आगमन होने पर वे समस्त ऋषिजन दुर्गम पर्वतों की कन्दराओं में जा छिपे, इधर शैवशास्त्रों का संप्रदाय प्रतिदिन लुप्त होने लगा। यह दशा देखकर कैलाश पर्वत-वासी श्रीकण्ठनाथ जी ने ऋषि दुर्वासा को शैवसंप्रदाय पुनः स्थापित करने के लिये प्रेरित किया। तत्पश्चात् ऋषि दुर्वासा जी ने श्री त्र्यम्बकनाथ नामी एक मानसिक पुत्र उत्पन्न किया जिन्होंने अद्वैत-प्रधान शैव शास्त्रों को संसार-मंडल में प्रकाशित किया। इसी भांति चौदह मानसिक सिद्ध उत्पन्न हुए। इस बीच में कलियुग का प्रभाव बहुत जोर पकड़ गया था, अतः पंद्रहवां मानसिक पुत्र, जो समस्त शैवशास्त्रों का ज्ञाता था, अपना मानसिक पुत्र उत्पन्न करने में असमर्थ रहा। “शैवशास्त्रों का संप्रदाय फिर से लुप्त न हो जाय” इस उद्देश्य को समक्ष रख कर उन्होंने एक ब्राह्मण कन्या से विवाह किया, जो समस्त गुणों से संपन्न थी। अपनी भार्या से उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम संगमादित्य था। इसके पश्चात् इनका पुत्र वर्षादित्य, उनका पुत्र अरुणादित्य हुआ। अरुणादित्य के पुत्र आनन्दादित्य हुए। इन्हीं के सुपुत्र श्री सोमानन्द जी हुए हैं और उनके शिष्य श्री उत्पलदेवाचार्य हुए हैं ॥ ५ ॥

तदास्वादभरावेशबृंहितां मतिषट्पदीम्।

गुरोर्लक्ष्मणागुप्तस्य नादसंमोहिनीं नुमः॥ ६॥

तत्-	=	उस ज्ञान की	संमोहिनीं	=	मोहित करने
		सुगन्धि के			वाली
आस्वाद-	=	रसास्वादन की	गुरोः	=	गुरुदेव
भर-	=	अधिकता के	लक्ष्मणागुप्तस्य	=	लक्ष्मणागुप्त जी की
आवेश-	=	आवेश से	मति-	=	बुद्धिरूपिणी
बृंहितां-	=	बढ़ी हुई	पट्पदीम्	=	भौरी की
(एवं)	=	तथा	(वयं)	=	हम
नाद-	=	व्याख्यान- रूपी	नुमः	=	स्तुति करते हैं॥ ६॥
		भिन भिनाहट से			

सदाभिनवगुप्तं यत्पुराणं च प्रसिद्धिमत्।

हृदयं तत्परोल्लासैः स्वयं स्फूर्जत्यनुत्तरम्॥ ७॥

यत्	=	जो	तत्	=	वही
अभिनवगुप्तं	=	अभिनवगुप्त द्वारा	अनुत्तरम्	=	अति उत्तम
		प्रतिपादित	(हृदयं)	=	शास्त्ररूपी हृदय
हृदयं	=	(शास्त्ररूपी) हृदय	पर-	=	महान्
सदा	=	सदैव	उल्लासैः	=	उल्लासों से
पुराणं	=	पुराना	स्वयं	=	आप ही आप
च	=	और	स्फूर्जति	=	विकास को प्राप्त
प्रसिद्धिमत्	=	विख्यात हुआ है		=	होता है॥ ७॥

अभिनवरूपा शक्तिः तद्गुप्तो यो महेश्वरो देवः।

तदुभययामलरूपमभिनवगुप्तं शिवं वन्दे॥ ८॥

(या)	=	जो	यः	=	जो
शक्ति-पराशक्तिः			महेश्वरः देवः	=	महादेव जी
अभिनवरूपा	=	नित नये रूप	तत्-	=	उस पराशक्ति से
		वाली	गुप्तः	=	सुरक्षित हैं
(अस्ति)	=	है	तदुभय-	=	उन दोनों
(च)	=	और	शिवं	=	शिव जी
यामल-	=	मिले जुले		=	महाराज को

रूपम् = रूप वाले वन्दे = मैं प्रणाम करता
अभिनवगुप्तं = अभिनवगुप्त स्वरूप हूँ॥ ८॥

अतः पराशक्ति और परमशिव की पारस्परिक संघुरूपता ही अभिनवगुप्त-पद का वास्तविक अर्थ है। अथवा श्लेषालङ्कार का आश्रय लेकर इस श्लोक में आचार्य अभिनवगुप्त जी की ओर भी संकेत है, अतः ये भी शिवशक्तिसमावेश से संपन्न थे। इस प्रकार उन्होंने अपने नाम को सार्थक बना कर जगत् में प्रसिद्ध किया॥ ८॥

यः पूर्णानन्दविश्रान्तसर्वशास्त्रार्थपारगः।

श्रीक्षेमराजः सो दिश्यादिष्टं मे गुरुरुत्तमः॥ ९॥

यः	= जो	सः	= वह (मेरे)
पूर्णानन्द-	= परमानन्द में	उत्तमः	= उत्कृष्ट
विश्रान्त-	= विश्रान्त होने	गुरुः	= गुरु-देव
	के कारण	श्रीक्षेमराजः	= श्री क्षेमराजजी
सर्व-	= सभी	में	= मुझे
शास्त्रार्थ-	= शास्त्रों के अर्थों के	इष्टं	= अभीष्ट पद का मार्ग
पारगः	= पारंगत हैं	दिश्यात्	= दिखायें ॥ ९॥

श्रीवसुगुप्तमहागुरुसोमानन्दप्रभूत्पलाचार्यान्।

अभिनवगुप्तं नाथं वन्दे श्री क्षेमराजञ्च॥ १०॥

(अहं)	= मैं
श्रीवसुगुप्त	= श्री वसुगुप्तनामी
महागुरु-	= महान गुरु
सोमानन्दप्रभु-	= सोमानन्दप्रभु
उत्पलाचार्यान्=	और उत्पल देव जी इन तीन आचार्यों
अभिनवगुप्तं	= अभिनव गुप्त जी
नाथं	= स्वामी
च	= और
श्रीक्षेमराजं	= श्रीमान् क्षेमराज जी की
वन्दे	= वन्दना करता हूँ॥ १०॥

नमो निखिलमालिन्यविलापनपटीयसे।

महामाहेश्वराय श्रीरामाय गुरुमूर्तये॥ ११॥

निखिल-	= समूचे	गुरुमूर्तये	= गुरु-मूर्ति-स्वरूप
मालिन्य	= पापरूपी मैल को	श्रीरामाय	= श्री राम जी को

विलापन- = दूर करने में नमः = नमस्कार
पटीयसे = बड़े प्रवीण (अस्तु) = हो॥ ११॥

महामाहेश्वराय= महेश्वर के बड़े भक्त

अदृष्टविग्रहागतं मरीचिचक्रविस्तरम्।

अनुग्रहैककारणं नमाम्यहं गुरुक्रमम्॥ १२॥

अहं = मैं विस्तरम् = विस्तार-स्वरूप

अदृष्ट- = अप्रकट (एवं) = तथा

विग्रह- = रूप में अनुग्रह- = दया के

आगतं = आये हुए एककारणं = एकमात्र कारण

मरीचिचक्र- = शक्ति चक्र के गुरुक्रमम् = गुरु-परम्परा को

नमामि = नमस्कार करता हूँ॥ १२॥

कहा भी है कि—

“मनुष्यदेहमास्थाय छन्नास्ते परमेश्वराः॥”

अर्थात् मनुष्य शरीर को धारण करके परमेश्वर ही गुरु रूप में गुप्त रूप से ठहरे हुए हैं॥ १२॥

तद्देवताविभवभाविमहामरीचि-चक्रेश्वरायितनिजस्थितिरेक एव।

देवीसुतो गणपतिः स्फुरदिन्दुकांतिः सम्यक्समुच्छलयतान्मम संविदब्धिम्॥१३॥

तत्- = उन परा आदि एक एव = एक ही

देवता- = देवताओं के देवीसुतः = भगवती के पुत्र

विभव- = ऐश्वर्य से गणपतिः = श्री गणेश जी

भावि- = होने वाले सम्यक् = भली भांति

महा- = महान् मम = मेरे

मरीचिचक्र- = शक्ति चक्र में संविदब्धिम् = ज्ञानरूपी समुद्र को

ईश्वरायित- = परमेश्वर के समान समुच्छलयतात्= उछलायें॥ १३॥

निजस्थितिः = अपने स्वरूप वाले

स्फुरत्- = धारण किये हुए

इन्दुकांतिः = चन्द्रमा की कांति से युक्त

यद्यपि परमेश्वर की शक्तियों की संख्या अनगणित है तथापि मुख्यतया उसकी तीन ही शक्तियाँ मानी गई हैं:— परा, परापरा और अपरा। परमेश्वर की इच्छाशक्ति पराशक्ति, ज्ञानशक्ति परापराशक्ति और क्रियाशक्ति अपराशक्ति कहलाती हैं। इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि जैसे चन्द्रमा के उदय होने पर ही समुद्र उछलने लगता है; इसी भांति श्रीगणेश जी भी मेरे ज्ञानरूपी समुद्र को उछलायें॥ १३॥

क्रमशः



भक्ति का तात्त्विक स्वरूप

— सुश्रीप्रभा देवी

न योगो न तपो नार्चा क्रमः कीऽपि प्रणीयते।

अमाये शिव मार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते॥

द्वैत रूपी माया से रहित इस शिव-मार्ग में न तो योग की क्रिया न तपस्या और नहीं किसी प्रकार की पूजा का क्रम फलीभूत होता है, यहां तो केवल पराभक्ति ही भगवान् का साक्षात्कार कराने में सफल होती है।

शिवस्तोत्रावली में उत्पलदेव जी का यह श्लोक लिखा हुआ सम्पूर्ण शैव-शास्त्र के सिद्धान्तों की समझो तालिका है। भक्ति की व्याख्या शैव-दृष्टि से एकदम अन्य शास्त्रों में वर्णित सिद्धान्तों से भिन्न है। यहां साकार उपासना गौण मानी जाती है। निराकार आत्मा का अहं रूप से अहर्निश चिन्तन ही सच्ची भक्ति है—

न पादपतनं भक्तिर्व्यापिनि परमात्मनि।

भक्तिर्भावस्वभावानां तदेकीभाव भावनम्॥

सभी जड़-चेतन में व्याप्त परमात्मा के प्रति किसी भी मूर्ति या देवता के सम्मुख बार-बार पैरों में झुकना भक्ति नहीं कहलाती। तथ्य भक्ति तो सभी विश्व के भौतिक पदार्थों में जो आत्मा व्याप्त है, उसी का बार बार चिन्तन या विमर्श करते हुए उसके साथ एकमेक हो जाना ही परा भक्ति है।

इसके आगे उत्पलदेव जी भक्ति की महानता वर्णन करते हुए कहते हैं—

सर्वतो विलसद्भक्तिर्तेजोध्वस्तावृतेर्मम।

प्रत्यक्षं सर्वभावस्य चिन्तानामपि नश्यतु॥

जब सब दशाओं में भक्ति की ज्वाला धधक जाये तो स्वभावतः उसके तेज से द्वैतप्रथात्मक आवरण मिट जाता है। शिव का वास्तविक स्वरूप सभी जागतिक पदार्थों में झलकने लगता है। इतना होकर भी भक्त भगवान से प्रार्थना करता है— अब इन भौतिक पदार्थों के विकल्प-वृत्तियों के संस्कार भी पूर्ण रूप से समाप्त हो जायें। सोलहवें स्तोत्र में फिर कहते हैं—

भक्तिर्भक्तिः परे भक्तिर्भक्तिर्नाम समुत्कटा।

तारं विरौमि यत्तीव्रा भक्तिर्मेऽस्तु परं त्वयि॥ २५ ॥

(हे प्रभु) मैं जोर से चिल्ला चिल्लाकर कहता हूँ कि मुझे आप परिपूर्ण (प्रभु) के प्रति अत्यन्त प्रबल (समावेश रूपिणी) भक्ति हो अत्यन्त धारावाही भक्ति हो, भक्ति-भक्ति सचमुच (केवल) परा-भक्ति हो।

यह तो हुआ श्री उत्पलदेव जी की वाणी में भक्ति का स्वरूप। अब अभिनव जी भक्ति का लक्षण क्या बखान करते हैं पढ़िये—

तव च काचन न स्तुतिरम्बिके! सकलशब्दमयी किल ते तनुः ।

निखिल मूर्तिषु मे भवदन्वयो मनसिजासु बहिष्प्रसरासु च॥

इति विचिन्त्य शिवे शमिता-शिवे जगति जातमयत्नवशादिदम्
स्तुतिजपार्चन चिन्तन वर्जिता न खलु काचन कालकलापि मे॥

हे माता ! आपका वास्तविक स्वरूप तो सभी शब्दों से परिपूर्ण है फिर भला आप की स्तुति कौन नहीं करता है। मैं सारा दिन जो कुछ बोलता हूँ वह तो सभी आप का ही गुणानुवाद करता हूँ। मुझे तो संसार की सभी मूर्तियों में आपका ही पर-सम्बन्ध, मन में उत्पन्न हुए संकल्पों तथा बाहिर फैले हुए पदार्थों में दिखाई देता है। ऐसा विचार कर हे अशुभों को दूर करने वाली पार्वती ! जगत् में मुझे तो बिना यत्न के किसी काल का एक निमेष भर भी आप की स्तुति जप और चिन्तन के बिना नहीं बीतता।

श्री गीता जी में भी भगवान् अर्जुन से कहते हैं—

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।

स सर्वविद्वज्जति मां सर्वभावेन मारतः ॥

इस श्लोक की व्याख्या श्री अभिनव जी ने यूँ की है—एवं जानानः सर्वमयं मामेव ब्रह्मतत्त्वमुपासीनः सर्वं मन्मयत्वेन विदन् सर्वेण भावेन-मूर्ति क्रियाज्ञानात्म-केन मामेव भजते-यत्पश्यति तद्वृगवन्मूर्तितयेत्यादि।

इस रीति से (भक्त) मुझ सर्वव्यापक ब्रह्मतत्त्व का आश्रय लेकर सभी पदार्थों को मेरा रूप ही जानकर सर्वभाव से मूर्ति, क्रिया और ज्ञान रूप से मुझे ही पूजता है, जो कुछ देखता है उसे भगवान् का रूप समझ कर ही देखता है, इत्यादि। (जो भी क्रिया) करता है उसे भगवान् का काम समझ कर ही करता है, जो जानता है उसे भगवान् का ज्ञान समझ कर ही जानता है। यही परा-भक्ति कहलाती है।

श्री गीता जी में भगवान् ऐसे भक्त के प्रति सौगन्ध खा कर कहते हैं—

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

कौन्तेय प्रतिजानेऽहं न मद्भक्तः प्रणश्यति॥ ६-३२॥

हे अर्जुन ! इस प्रकार मुझमें लौ लगाने वाला (विघ्नों के बिना) शीघ्र ही धर्म-परायण भक्त बन जाता है और सनातन परम-शान्ति को प्राप्त करता है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ— मेरा भक्त फिर अपने लक्ष्य से नहीं डिगता।

यह प्रतिज्ञा करके फिर भक्ति कैसे करनी चाहिये इसका निर्देश करते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

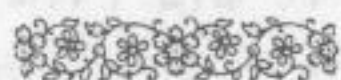
मामैवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः॥

(हे अर्जुन) तुम मुझमें टिकाये हुए मन वाले बनो। मेरा भक्त बनो। मुझे नमस्कार करो। इस प्रकार मेरे कारण हुए (तुम) आत्मा को मुझमें जुटाकर मुझे ही प्राप्त करोगे।

हमारे प्रातः स्मरणीय गुरुवर्य श्री ईश्वरस्वरूप जी महाराज जन्म से ही इसी पराभक्ति में रंगे थे। उनकी प्रधान शिष्या श्री देवी शारिकाजी भी इसका अपवाद नहीं थी। इन महान् विभूतियों का उठना, बैठना, आलाप, व्यवहार दैनिक कार्य अपूर्व, अलौकिक तथा विमर्शपूर्ण था। इन दोनों के सहवास में जो भी भाग्यशाली रहे वे ही उनके तथ्य रूप को जान पाये। ऐसे महान् सन्तों का दर्शन ही शिष्य के सभी सन्तापों का नाशक होता है। कहा भी है—

दर्शनात् स्पर्शनात् वापि विततात् भव सागरात्।

तारयिष्यन्ति योगीन्द्राःकौलाचारप्रतिष्ठिता ! ॥



ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज के
श्रीनगरस्थ पुस्तकालय की एक और आमूल्य भेंट

स्वरूप-अनुसन्धान-स्तुतिः

भाषा अनुवादकः प्रो० मखन लाल कुकिलू

ओं जुंसः परमहंसाय विद्महे
सोऽहंसः मृत्युंजयाय धीमहि
जुं ओं तन्नोऽमृतेश्वरः प्रचोदयात् ॥ ३॥

इति स्वात्मानं ब्रह्ममयं विभाव्य

तीन बार इस गायत्री का चिन्तन करके अपने आपको ब्रह्मस्वरूप समझकर पढ़िये
कि—

अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकमाक्।

सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्त स्वभाववान्॥

मैं देव ही हूँ न दूसरा हूँ मैं ब्रह्म ही हूँ न दुःखभोक्ता।

मैं सत् चिदानन्द स्वरूप ही हूँ स्वभाव से नित्य विमुक्त मैं हूँ॥

(१)

तपोयज्ञदानादिभिः शुद्ध बुद्धिर्विरक्तोऽग्रजादेःपदे, तुच्छ बुद्ध्या
परित्यज्य सर्वं समाप्नोति तत्त्वं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि॥ १॥

दान यज्ञ तप आदि कर्मों से निर्मलधी (बुद्धि वाला) बनकर श्रेष्ठ पदों के प्रति उदासीन तथा सब कुछ असार बुद्धि से त्यागकर जिस साधक को परम तत्त्व की प्राप्ति होती है, वह परम तत्त्व परं ब्रह्म नित्य सनातन मैं ही हूँ।

(२)

दयालुं गुरुं ब्रह्मनिष्ठं प्रशान्तं समाराध्य भक्त्या विचार्य स्वरूपम्।

यदाप्नोति तत्त्वं निदिध्यासि विद्वान्। परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ २॥

ब्रह्मलीन दयामय तथा शान्त स्वभाव वाले सद्गुरु की भक्ति से आसधना करके तथा स्वात्म स्वरूप का अच्छी तरह से विचार करके साधक योगी अवहित मन से जिस तत्त्व का निदिध्यासन करता है वह परंतत्त्व परं ब्रह्म नित्य सनातन मैं ही हूँ।

(३)

यदानन्दरूपं प्रकाशस्वरूपं निरस्त प्रपञ्चं परिच्छेद शून्यम्।

अहं ब्रह्मवार्तेक गम्यं तुरीयं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ३॥

जो आनन्दस्वरूप और प्रकाशरूप है, जो सारे प्रपञ्चों से परे है तथा अवधि से रहित है जो मैं ब्रह्म हूँ एकमात्र इसी भाव से जानने के योग्य है तुरीयपद स्थित वह परं तत्त्व परं ब्रह्म नित्य सनातन मैं ही हूँ।

यदज्ञानतो भाति विश्वं समस्तं विनष्टं च सद्यो यदात्मप्रबोधम्।

मनोवागतीतं विशुद्धं विमुक्तं परं ब्रह्मनित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ४॥

ज्ञानाभाव से जो यह जगत् का सारा प्रपञ्च सत्य भासित होता है पर ज्ञान प्राप्ति से तत्क्षण वह असत्य प्रतीत होता है। जो मन और वाणी से परे है, जो विशुद्ध और विमुक्त है वह परं तत्त्व परं ब्रह्म नित्य सनातन मैं ही हूँ।

निषेधे कृते नेति नेतीति वाक्यैः समाधिस्थितानां यदाभाति पूर्णम्।

अवस्थात्रयातीतमद्वैतमेकं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ५॥

“नेति नेति वेदवाक्यों से निषेध करने पर भी जो परतत्त्व समाधि में लीन साधकों को परिपूर्ण भासित होता है, जो तीन अवस्थाओं की सीमा से परे हैं, अनन्य और अद्वैत है वह परं तत्त्व परं ब्रह्म नित्य सनातन मैं ही हूँ।

यदानन्दलेशैः सदानन्दि विश्वं यदाभातमद्वैतमाभाति सर्वम्।

यदालोचने हेयमन्यत्समस्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ ६॥

जिस परं तत्त्व के आनन्द की धीमी फुहारों से भी समस्त विश्व सदा आनन्दित प्रतीत होता है, जिस परं तत्त्व के आभासित होने के पश्चात् यह सारा जगत् प्रपञ्च विहीन दिखता है, जिस परंतत्त्व के मन्थन करने पर शेष सब कुछ त्याज्य प्रतीत होता है, वह परं तत्त्व परं ब्रह्म नित्य सनातन मैं ही हूँ।

अनन्तं विभुं सर्वयोनिनिरीहं शिवं संगहीनं यदोङ्कार गम्यम्
निराकारमूर्जस्वलं मृत्यु-मृत्युं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि॥ ७ ॥

जो परतत्त्व अन्तहीन है, व्यापक है, सबों का कारण है इच्छा रहित है, कल्याणस्वरूप है, संग विहीन है, प्रणवोच्चार से जानने योग्य है, निराकार व तेजपूर्ण है, महाकाल का भी काल है वह परं तत्त्व परं ब्रह्म नित्य सनातन मैं ही हूँ।

यदानन्दसिन्धौ निमग्नः पुमान् स्यात् अविद्याविलास समस्त प्रपंचः।

तदा न स्फुरत्यद्भुतं यन्निमित्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि॥ ८ ॥

अब एक साधक इस आनन्द सागर में डूब जाता है, तो अज्ञान विलास से उत्पन्न यह सारा असत्य जगत् प्रपंच कहीं भी नज़र नहीं आता है। जिस परतत्त्वज्ञान के परिणामस्वरूप इस अवस्था का भान होता है वह परं तत्त्व पर ब्रह्म नित्य सनातन मैं ही हूँ।

स्वरूपानुसन्धान रूपस्तुतिंयः पठेत् आदरात् भक्तिभावैर्मनुष्यः।

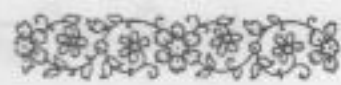
श्रुणोतीति वा नित्यमुद्यक्त चित्तो भवेदीशतुल्योस्ति वेदः प्रमाणम्॥

भक्तिभाव से पूर्ण जो साधक, श्री शंकराचार्य विरचित विज्ञाननवक नामक इस स्वरूप-अनुसन्धान रूप स्तुति को सदा समाहित भाव से आदर के साथ पढ़ता है या सुनता है वह साधक अवश्य ही शिवतुल्य हो जाता है ऐसा वेदों का प्रमाण है।

सौजन्य से

सुश्री प्रभादेवी

ईश्वर निशात, कश्मीर



लोभः पापस्य कारणम्

लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम्।
तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः॥
लोभाविष्टो नरो वित्तं वीक्षते न स चापदम्।
दुग्धं पश्यति मार्जारो न तथा लगुडाहतिम्॥
लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते।
लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम्॥

काश्मीर अद्वैत शैव दर्शन और विश्वात्मभाव

– By Dr. Jagir Singh

Reader, Sanskrit Deptt. Jammu University, Jammu.

आज सम्पूर्ण विश्व नाना प्रकार की समस्याओं से घिरा पड़ा है। कहीं जाति, धर्म, वर्णादि के झगड़े हैं तो कहीं भाषा, संस्कृति एवं जमीन-जायदाद आदि की समस्याएँ मुँह बायें (फैलाये) स्वच्छ शान्त ओर सुखमय जीवनयापन में घोर बाधाएँ बनी हुई हैं। यही कारण है कि आज का मानव ढेर सारी अत्याधुनिक सुख-सुविधाओं के बाह्य साधन-सामग्री उपलब्ध होने पर भी मानसिक रूप से दुविधा, भ्रम और तनावपूर्ण वातावरण से असन्तोषमय जीवन व्यतीत करने पर विवश है। नैतिक मूल्यों का हास, रिश्वतखोरी, पक्षपात और भ्रष्टाचार का विकास आदि जलती में तेल का कार्य कर रहे हैं। जैसे-जैसे इन बाधाओं को दूर करने की कोशिश की जा रही है, तो मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की- की उक्ति अक्षरशः चरितार्थ होती दृष्टिगोचर होती है। ऐसे में स्वाभाविकरूप से समाधान की बाह्य खोज की अपेक्षा कुछ आन्तरिक अवलोकन की आवश्यकता है जिसके लिये हमारे महापुरुष बार-बार सङ्केत करते हुये सदैव सचेष्ट रहे हैं-

‘काहे रे वन ढँढन जाई, तेरा साँई तुझ में बसे’

हमारे वेद शास्त्र, उपनिषदों और ऋषि-मुनि आन्तर तत्त्व की गवेषणा एवं अनुभूति पर बल देते रहे हैं और इसके यथार्थ ज्ञान को ही परम आनन्द का मूलस्रोत बतलाते हैं। फलतः विश्व में अनेक धर्म अथवा दर्शन विकसित हुये हैं, जिनका व्यक्ति, समाज, देश एवं विश्व के स्तर पर अपना-अपना देश-काल एवं वातावरण के अनुसार विशिष्ट प्रभाव रहा है। परन्तु ऐसा सब विद्यमान रहने पर भी, कहीं न कहीं कुछ ऐसी कमियाँ अथवा कमजोरियाँ रही हैं, जिससे मानवता अथवा विश्व का वह कल्याण नहीं हो सका है जो अपेक्षित रहा है, क्योंकि सम्पूर्ण विश्व को अथवा मानव मात्र को ऐसे धर्म अथवा दर्शन की आवश्यकता है, जिसके सिद्धान्त अथवा दृष्टिकोण सार्वकालिक एवं सार्वभौम हो जो पूरी मानव जाति अथवा विश्व को एकसूत्र में पिरो सके। ऐसे में कश्मीर की पावन धरा पर बाह्य सौन्दर्य के साथ-साथ अध्यात्मामृत रस के सौरभ को कुङ्कुम के समान सुगन्धित करने वाला ‘काश्मीर अद्वैत शैव दर्शन सर्वथा अनुकरणीय है जो विश्वात्मभाव की भावना का प्रबल समर्थक है।

शैवाचार्य राजानक क्षोमराज अपनी प्रसिद्ध एवं शाङ्करोपनिषत् (सर्वागम शैवी रहस्य) का साररूप अभिव्यक्त करने वाली रचना ‘प्रत्यभिज्ञाहृदयम्’ में बतलाते हैं कि श्री

परमशिव भुरक (परमसत्ता, Ultimate Reality) विश्व शरीर (विश्वमय) हैं और सभी प्राणी भी उस प्रकाशरूप (विश्वोत्तीर्ण) के रूप होने के कारण प्रकाशैकात्म्य से विश्वशरीर शिवैकरस ही हैं। अर्थात् शिव ही हैं। केवल उनकी माया शक्ति के प्रभाव से अपना यथार्थरूप अभिव्यक्त न होने से संकुचित की भांति आभासित होते हैं। वास्तव में, संकोच भी चिदैकात्म्य से प्रथमान होने से चिन्मय ही होता है, अन्यथा उसका अस्तित्व ही सम्भव नहीं। वैसा ही मान्यता सिद्धान्तवचन में मिलती है, जिसके अनुसार एक शरीर और शरीरी में सब शरीर और शरीरियों का अन्तर्भाव है कहा गया है कि विग्रहो विग्रही चैव सर्व विग्रह विग्रही। जहाँ मनुस्मृति में एक राजा में सभी देवों का अंश अथवा तेज विद्यमान होने की बात कही गई है और गीता में प्राणियों में स्थित विभूति (तेज) को भगवान् का रूप कहा गया है, वहीं त्रिशिरो मत में - 'यह शरीर सभी देवों का रूप हे- ऐसा अभिव्यक्त करके कहा गया है कि - 'त्रिशिरो भैरव विश्व में व्याप्त होकर साक्षात् व्यवस्थित है। त्रिशिरो भैरवः साक्षात् व्याप्य विश्वं व्यवस्थितः। यही भाव ईशावास्योपनिषद् में प्रकट करके कहा गया है कि - 'इस जगत् में जो कुछ भी है, वह ईशा (ईश्वरी शक्ति, पराशक्ति) का आवास रूप है अर्थात् सभी में एक ही परमसत्ता विद्यमान है। ऐसा ही मत मार्कण्डेयपुराण अन्तर्गत दुर्गासप्तशती में भी मिलता है- 'सभी प्राणियों में एक ही भगवती सर्वत्र एवं सर्वथा विद्यमान एवं स्फुरणास्रोत रूप से स्थित है। सिद्ध वसुगुप्त स्पन्द शास्त्र में कहते हैं कि जीव सर्वमय (विश्वमय, विश्व से अभिन्न) है। संवेदन और संवेद्य संवेत्ता से ही स्फुरित होने से तद्रूप होते हैं, इसलिये शब्द, अर्थ और चिन्तन में सदा सर्वत्र भोक्ता के ही भोग्यभाव से स्थित होने के कारण ऐसी कोई अवस्था नहीं है, जो शिवरूप न हो। कहा है कि—

तेन शब्दार्थ चिन्तासु न सावस्था न या शिवः।

भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः॥

भु श्री कल्लट, उत्पलवैष्णव, राजानक रामकण्ठ श्री क्षेमराजादि शैवाचार्यों ने इस शास्त्र की व्याख्या करते हुये इस मत का प्रबल समर्थन किया है। श्री क्षेमराज ने शक्ति सूत्रों में बतलाया है कि जिस प्रकार भगवान् विश्वशरीर है, उसी प्रकार चेतन (व्यष्टि, व्यक्ति, जीव) भी चिति के संकुचित होने के कारण संकुचित रूप में विश्वमय ही होता है। श्रीमत् परमशिव, जो कि विश्वोत्तीर्ण, विश्वात्मक, परमानन्दमय, प्रकाशैकघन है, के लिये शिव से लेकर पृथिवी पर्यन्त सब कुछ अभेदरूप से ही स्फुरित होता है। वास्तव में अन्य कोई ग्राहक अथवा ग्राह्य है ही नहीं, अपितु श्री परमशिव भुरक ही इस प्रकार नाना वैचित्र्य सहस्रों द्वारा प्रकाशित होता है।

इसलिये अद्वैत शैव दर्शन में जाति, वर्ण, देश, काल, भाषा अथवा मत, धर्म एवं

दर्शन विशेष आदि के आधार पर कोई द्वेषभाव अथवा हीनभावना की बात नहीं मिलती है, प्रत्युत उन्हें नट की भाँति एक ही आत्मा (परमसत्ता) की स्वेच्छा से अवगृहीत (अवकल्पित) विविध एवं कृत्रिम भूमिकायें माना गया है। इसी प्रकार अखिल विश्व में जितने भी प्राणी (जीव) हैं और उनके विविध मानसिक स्तरों की क्षमता के अनुसार जो-जो नील बाह्य सुख (आन्तरिक) आदि ज्ञान हैं, उन सब की स्थिति अर्थात् अन्तर्मुखरूप विश्रान्ति ही अद्वितीय चिदानन्दघन स्वात्मरूप की अभिव्यक्ति का उपाय है। इस प्रकार एक ही चिदात्मा परमसत्ता के स्वातन्त्र्य से अवभासित ये सभी भूमियाँ स्वातन्त्र्य के प्रच्छादन (गोपन) और उन्मीलन (प्रकाशन) के तारतम्य के कारण भिन्न-भिन्न आभासित होती हैं। इस प्रकार एक ही आत्मा विश्व में व्याप्त है। सीमित दृष्टिकोण वाले उसके एक एक अंश में उसकी इच्छा से ही भिन्न-भिन्न सीमित रूपों से तादात्म्य स्थापित कर बैठते हैं, जबकि बद्ध (अज्ञानी, संकुचितात्मा) प्रमाताओं की व्याप्ति का सार देह इत्यादि पर्यन्त ही सीमित होता है और परमार्थस्वरूप विश्वमय-विश्वोत्तीर्ण आत्मरूप की महाव्याप्ति को परशक्तिपात के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिये अद्वैत शैवी भक्त शिरोमणि व परम दार्शनिक उत्पलदेवाचार्य शिवस्तोत्रावली में कहते हैं कि परमसत्ता ही सभी की आत्मा है और प्रत्येक जीव अपनी आत्मा से अनुराग रखता है। इस प्रकार जो भी प्राणी इस रहस्य को समझकर स्वभावसिद्ध भक्ति का अनुसरण करता है, वह भव-सागर से पार हो जाता है, विश्वविजयी कहलाता है—

त्वमेवात्मेश सर्वस्य सर्वश्चात्मनि रागवान्।

इति स्वभावसिद्धां त्वदृक्तिं जानदृयेदृनः —शि० स्तो०, 1/7

तात्पर्य यह है कि सभी जीव शिवरूप होते हैं, अतएव राग-द्वेष किससे? प्रत्युत जैसे अपनी आत्मा (ज्ञान) सब से प्रिय होती है, वैसे ही सभी की आत्मा भी अपने जैसी होने से प्रेम अथवा पूजा की ही पात्र होती है, न कि घृणा (नफरत) अथवा निन्दनीय। अतएव सभी को ईश्वर रूप समझने वाला प्राणी सम्पूर्ण विश्व को अपना रूप ही मानता है और इस प्रकार सर्वप्रिय, अजातशत्रु होता है। उसे कोई भय, चिन्ता अथवा क्लेश नहीं हो सकता। सम्राट् अशोक का भी कलिंग विजय के पश्चात् ऐसा ही अनुभव था जिससे आप्लावित होकर उन्होंने मानवमात्र को प्रेम करने का सन्देश देने का अथक प्रयास किया। बृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य मैत्रेयी से इसी रहस्य को प्रकट करते हुये कहते हैं कि पति, जाया, पुत्र, वित्त, ब्रह्म, क्षत्र, लोक, देव, भूत, किंवा सभी अपनी आत्मा के कारण ही प्रिय होते हैं। इसीलिये आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन के लिये प्रयत्न करने के लिये उपदेश करते हैं। उनका कथन है कि यह आत्मा सभी प्राणियों में विद्यमान है और सभी से अन्तरतम है, परन्तु इतना समीपस्थ

स्वस्वरूप होते हुये भी वे उसे नहीं जानते। सभी प्राणी उसके शरीर हैं और वह अन्तर्यामी सर्वनियन्त्रक अमृत एवं सर्वोत्कृष्ट है। ईश्वर प्रत्यभिज्ञा में कहा गया है कि स्वात्मा ही सभी प्राणियों का एक ही (अद्वितीय) महेश्वर है और इस परमार्थ दशा में विश्वोत्तीर्ण होता है तथा वहीं विश्व रूप भी होता है। ऐसे ज्ञान वाले को अहं (चेतनात्मा) और इदं (विश्व) एकरूपता से अनुभूत होता है। अर्थात् सम्पूर्ण विश्व को आत्मरूप ही समझता है। कहा है—

स्वात्मैव सर्वजन्तूनामेक एव महेश्वरः।

विश्वरूपोऽहमिदमित्यखण्डामर्शबृंहितः॥ —ई० प्र०

वास्तव में स्वस्वरूप के अज्ञान के कारण ही - 'यह हिन्दू है, यह मुस्लिम है, सिख है अथवा ईसाई है एवं निर्धन है, धनवान है, बौद्ध है, जैनी है, वेदान्ती है, समाजी है आदि आदि नानाविध जाति, वर्ण, धर्म, मत, भाषा, देश अथवा संस्कृति विशेष आदि आदि विषयक'-भेदभाव होते हैं एवं फलस्वरूप ईर्ष्या-द्वेष, कलह वा नानाविध दंगे, झगड़े, आतङ्क, पक्षपात, अनैतिक कर्म जन्म लेते हैं, क्योंकि अज्ञानी पुरुष सभी में एकात्मा, एक ईश्वर न मानकर अनेकात्मा अथवा भिन्न-भिन्न पुरुषों की कल्पना करता है-तभी वैसी सर्जना से उसको पारमार्थिक आनन्द न होकर जागतिक तुच्छ विषय भोगों में अनुरक्ति से सुख-दुःख का अनुभव होता है।

तत्र स्वसृष्टेदंभागे बुद्ध्यादिग्राहकात्मना।

अहङ्कारपरामर्शपदं नीतमनेन तत्॥

स्वरूपापरिज्ञान मयोऽनेकः प्रमान्यतः।

तत्र सृष्टौ क्रियानन्दौ भोगो दुःखसुखात्मकः॥ —ई० प्र०, 4/2, 3

सिख गुरु साहिबा भी ऐसा ही मत अभिव्यक्त करते हुये कहते हैं कि—

अव्वल अल्ला नूर उपाया, कौन भले कौन मन्दे।

एक नूर ते सब जग उपजया ईश्वर के सब बन्दे॥

एवं 'मानुष की जाति, सब एक पहचानवो तथा - नानक नाम चढदीकला, तेरा भाणा सर्वत दा भला - आदि आदि। परमहंस श्री राम कृष्ण भी एकात्मा एक ईश्वर की ही बात कहते हैं और उसकी प्राप्ति के लिये - नाना मत, नाना पथ - कहकर मानव-मानव अथवा मत मतान्तरों के भेदभाव को लेकर आत्मा व ईश्वर को बाँटने का विरोध करते हैं। तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण विश्व एवं प्राणी उस एक परमात्मा के हैं और उन द्वारा अपने दृष्टिकोण से की जाने वाली पूजा एक ही ईश्वर की वन्दना है, अतः सारा विश्व एकरूप है, एकात्मा है फिर दंगे फसाद वा आतङ्कवाद किसलिये ? भगवान् श्री कृष्ण भी गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुये 'जीवमात्र' को अपना पवित्र अंश द्योतित करते हैं

और इसके बिना किसी भेदभाव के विश्वभर के जीवों की बात है, किसी एक देश, धर्म अथवा जाति विशेष आदि की नहीं। इसीलिये शैवाचार्य अपनी रचनाओं का प्रमुख लक्ष्य जनमात्र का कल्याण बतलाते हैं। जो उन्होंने अपनी कठिन साधना, तप, शास्त्राभ्यास और ईश्वर अनुग्रह से प्राप्त किया था। तभी धर्मशास्त्रों के नीतिवचनों में अपने-पराये के भेद की बात करने वालों को क्षुद्र (तुच्छ) हृदय एवं समस्त विश्व को अपना परिवार मानने वालों को उदार (विशाल) हृदय वाले बतलाया गया है। इसलिये भगवान् भैरव (शिव) भगवती भैरवी (शक्ति) से विज्ञानभैराव में बतलाते हैं कि जीव को सम्पूर्ण जगत् अथवा अपने शरीर में एक ही चेतनात्मा के आनन्द चमत्कार, ऐश्वर्य) का अनुभव करना चाहिये, ऐसा विमर्श (awareness) करने से वह एकदम स्वामृतरूप परानन्द से अभिभूत हो जायेगा अर्थात् आवागमन के चक्र से छूटकर ब्रह्मरूप ही हो जाता है। सारा जगत् अपना रूप ही अनुभव करने से उसे कोई भय, चिन्ता अथवा बीमारी नहीं सताती। पुनः परमशिव भगवती से जगत्कल्याणार्थ में बतलाते हैं कि लौकिक परस्पर भेदभाव को छोड़कर अद्वैतभाव (समभाव) का अनुसरण करना चाहिये, क्योंकि एक तो ऐसा व्यक्ति भौतिकरूप से सभी चिन्ताओं, भयों और बीमारियों आदि से मुक्त होकर स्वस्थ एवं सुखमय जीवन व्यतीत करता है, तो दूसरी ओर आध्यात्मिक रूप से सभी अज्ञानजनित आवागमन के बन्धनों से छुटकारा पाकर शिवरूपता की प्राप्ति करता है, क्योंकि ऐसा महापुरुष सभी देवी-देवताओं, वर्ण-आश्रमों, पदार्थों, प्राणियों के प्रति समतादर्शी हो जाता है, इसलिये वह सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार के लोकानन्द को शिवसूत्रों में योगी के समाधिसुख के समान बतलाया गया है। राजानक क्षेमराज स्पन्दनिर्णय एवं शिवसूत्रविमर्शिनी में स्पन्दशास्त्रोक्त आत्मनो ग्रहः का अर्थ स्पष्ट करते हुये बतलाते हैं कि आत्मा का ग्रहण अर्थात् ज्ञान यही है जो विश्वात्मक शिव से अभिन्नता का अनुभव करना है। ऐसे अनुभव विश्वात्मा शिव ही हूँ वाले के लिये सारा जगत् मंगल तन्त्र के अनुसार शिवशक्तिमय एवं अपनी शक्तियों का विस्फाररूप अनुभव होता है। वह देश, काल, कारण (रूप) की बाधाओं से अप्रभावित रहकर सामान्य जीवन व्यतीत करते हुये भी विश्वात्म स्वरूपलाभ करता है, महेशता का अनुभव करता है। कहा गया है कि—

सो ऽहं ममायं विभव इत्येवं परिजानतः।

विश्वात्मनो विकल्पानां प्रसरेऽपि महेशता॥ —ई०प्र०, 4/12



नमोः नमः सद्गुरुपादुकाभ्याम्

— प्रो० मखनलाल कुकिलू

शैवी तन्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों में सद्गुरु पादुका के महत्त्व का बखान स्थान स्थान पर किया गया है। सद्गुरु महाराज से अभिन्न गुरु पादुका वास्तव में उसी रूप में पूजनीय है जिस रूप में सद्गुरुदेव की मूर्ति। पूजा के आरम्भ में ही तन्त्रों का निर्देश है कि—

वन्दे महेशं विश्वेशं, वन्दे वाग्देवतां पराम्।

वन्दे लम्बोदरं देवं वन्देऽहं गुरु पादुकाम्॥

कि पहले भगवान् शंकर की वन्दना करनी चाहिए, फिर वाग्देवता (सरस्वती माता) की वन्दना करनी चाहिए फिर श्री महागणेश की वन्दना करनी चाहिए तत्पश्चात् अपने सद्गुरु महाराज की पादुका की वन्दना करनी चाहिए। इससे स्पष्ट है कि ईशान् सरस्वती, गणेश और गुरुपादुका सर्वप्रथम क्रमशः आराध्य हैं। श्रीगुरुपादुका स्मृति के विषय में सद्गुरु महाराज ईश्वरस्वरूप जी कहा करते थे कि—

तावत् आर्तिभयं तावत् तावत् शोकभ्रमादयः।

यावत् नायाति शरणं श्री गुरो पादुकास्मृतिम्॥

अर्थात् सांसारिक क्रियाओं का भय, दुःख भ्रम मोह आदि तब तक शान्त नहीं होगा जब तक कि गुरु महाराज की पादुका की शरण में शिष्य या साधक नहीं जायेगा। अतः गुरु पादुका की शरण में जाने से ही सत् शिष्य की सद्गति प्राप्त हो सकती है।

श्री कुलार्णव तन्त्र में श्री गुरु पादुका स्मृति के विषय में जो वर्णन मिलता है वह अवर्णनीय है। श्री देवी से श्री भैरव कहते हैं कि हे देवी केवल श्री गुरुपादुका स्मृति ही कलियुग में सारे पापों का नाश करने वाली है। जो प्राणी घोर पाप कर्म करके प्रायश्चित्त आदि करने से उनका शमन नहीं कर सकते हैं उनके लिए श्री गुरु पादुकास्मृति ही एकमात्र उपाय है। “प्रायश्चित्त विहीनानां सर्वपाप हरं कलौ।” जो सद्गुरु महाराज मोहान्धकार से आक्रान्त शिष्य को अन्धकूप से उद्धार करता है, मात्र दृष्टिपात से जो सद्गुरु तीनों लोकों को वश में करता है, जो सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान, अनुग्रहात्मक पंचकृत्यकारी है, जिसकी इडा और पिंगला नाडी में गंगा और यमुना है और मध्यधाम में सरस्वती है, उस गुरु की केवल पादुकास्मृति ही पशुपाशविमोचक है। श्री गुरु गीता में कहा है—

गुरुः शिवः गुरुः विष्णुः गुरुर्ब्रह्मः गुरुः परः

गुरुरग्निर्गुरुः मन्त्रो भानुः इन्द्रः तथैव च॥

अन्यत्सर्व सप्रपञ्चं निष्प्रपञ्चं गुरुः स्मृतः

तस्मात् श्री पादुकाध्यानं सर्वपाप निकृन्तनम्॥

अर्थात् गुरु ही शिव, विष्णु, ब्रह्मा, अग्नि, मन्त्र, सूर्य और इन्द्र है। इस जगत में सब कुछ सप्रपंच है कवेल गुरु ही एकमात्र निष्प्रपंच है। अतः श्री गुरु की पादुका का ध्यान सारे पापों का विनाशक है। इतना ही नहीं श्री गुरु पादुका की स्मृति महारोग, महापाप, महादुःख, महाभय, महान् उत्पात तथा भीषण आपदा में सर्वरक्षाकरी कही गई है:-

महारोगे महोत्पाते महादुःखे महाभये। महापदि महापापे स्मृता रक्षति पादुका॥

श्री गन्धर्वतन्त्र में “श्री गुरुपादुकाभ्यो नमः अथवा पादुकां पूजयामि नमः का उल्लेख प्रधान देवी देवताओं के पूजाविधान में स्थान स्थान पर किया गया है। कहा गया है-

उदके लवणं लीनं यथा भवति पार्वति।

मनो भवति वै लीनं पादुकायां गुरोः प्रिये॥

भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं कि हे पार्वती जैसे जल में नमक संपूर्णरूप से लीन होता है उसी प्रकार से श्री गुरु की पादुका में भी मन संपूर्ण रूप से लीन होकर एकाकार होता है। आचार्य रामेश्वर झा ने हमारे सद्गुरु ईश्वरस्वरूप लक्ष्मणजी महाराज की गुरु स्तुति में “नमो नमः श्री गुरुपादुकाभ्यां लिखकर गुरु पादुका की महत्ता पर अपूर्व प्रकाश डाला है। कहा है कि-

उद्घाटिताद्वैत महेक्षणाभ्यां निमीलितद्वैत विलोचनाभ्यां

मोहान्धकोरऽपि विरोचनाभ्यां नमो नमः श्री गुरु पादुकाभ्याम्।

अर्थात्-

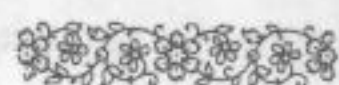
द्वैतभाव के घोर तिमिर से मूंदपडे नेत्रों को तत्क्षण

सोऽहं ज्योतिसे रंगनेवाली मोहनिशा में भी चमकीली

गुरुवर की महनीय पादुका का हो बारंबार प्रणाम॥

श्री देवी रहस्य तन्त्र में भी श्री गुरुपादुका की महनीयता पर यथासंभव प्रकाश डाला गया है। श्रीचक्रपूजाविधान में आदरणीय गुरु पंक्ति तथा गुरु पादुका का उल्लेख करके “श्रीचक्रार्चामारभेत्” ऐसा निर्देश मिलता है। अर्थात् श्री चक्र की पूजा से पूर्व अभीष्ट सम्बन्धित गुरुओं तथा गुरु पादुका की पूजा यथासंभव करने का वहां विधान है। तब तक श्री चक्र की पूजा कर ही नहीं सकते हैं जब तक गुरुओं और गुरु पादुकाओं की भक्ति भाव से पूजा नहीं होगी।

संक्षेप में यह कहा गया है कि शरीर में रहते अशरीर भाव में जाने विश्व में रहते विश्वोत्तीर्ण होने तथा ससीम की आनन्दभूमि का भोग करते हुए असीमावस्था में समाहित होने के लिए श्री गुरुपादुका का मनन, चिन्तन, ध्यान व निदिध्यासन अनिवार्य है॥



ह्रीं ईश्वराश्रम ट्रस्ट

(ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू महाराज द्वारा स्थापित)

गुप्तगङ्गाइश्वर निशात) श्रीनगर - 191021 (काश्मीर)

2, महेन्द्रनगर, कनालरोड, जम्मू - 180016

5, आर/डी सरिता विहार, नई दिल्ली - 110044

वार्षिक त्यौहार व महोत्सव - २०६० (विक्रमी)

अप्रैल २, २००३	बुधवार	नवरेह (नव वर्ष)
अप्रैल १४, २००३	सोमवार	वैशाखी
अप्रैल २८, २००३	सोमवार	ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू महाराज जन्मजयन्तीदिवस
मई ७, २००३	बुधवार	लिङ्गप्रतिष्ठाजयन्ती श्री अमृतेश्वरभैरव मन्दिर महेन्द्रनगर जम्मू
मई ९, २००३	शुक्रवार	सौर जन्म-वर्ष दिवस ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू महाराज
मई १२, २००३	सोमवार	लिङ्गप्रतिष्ठाजयन्ती श्री अमृतेश्वरभैरव मन्दिर इश्वर गुप्तगङ्गा
जुलाई १३, २००३	रविवार	श्रीगुरुपूर्णिमा
अगस्त १२, २००३	मंगलवार	श्रावणपूर्णिमा
अगस्त १९, २००३	मंगलवार	जन्माष्टमी
सितम्बर १२, २००३	शुक्रवार	पितृपक्ष जग स्वामी महताबकाक जी महाराज
सितम्बर १३, २००३	शनिवार	पितृपक्ष जग सुश्रीशारिका देवी जी
सितम्बर १४, २००३	रविवार	(निर्वाण जयन्ती) वार्षिक जग ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू महाराज
सितम्बर २४, २००३	बुधवार	पितृपक्ष जग स्वामी राम जी महाराज
अक्टूबर २८, २००३	मंगलवार	स्वामी महताबकाक जी महाराज जन्मजयन्ती
नवम्बर २५, २००३	मंगलवार	सुश्रीशारिका देवी जी जन्मजयन्ती
दिसम्बर २०, २००३	शनिवार	स्वामी राम जी महाराज जन्मजयन्ती
जनवरी २०, २००४	मंगलवार	वार्षिक जग स्वामी राम जी महाराज तथा शिव चतुर्दशी
फरवरी ८, २००४	रविवार	वार्षिक जग सुश्रीशारिका देवी जी
फरवरी १८, २००४	बुधवार	महाशिवरात्रि
फरवरी २१, २००४	शनिवार	वार्षिक जग स्वामी महताबकाक जी महाराज

सार्वजनिक सूचनार्थ प्रकाशित

(इन्द्र कृष्ण रैना)
ट्रस्टी तथा सचिव
ईश्वराश्रम ट्रस्ट

Ishwar Ashram Trust

(Founded by Ishwarswaroop Swami Lakshman Joo Maharaj)

Guptganga, Ishber (Nishat) - 191021 (Kashmir)

2-Mohinder Nagar, Canal Road, Jammu - 180016

5-R/D Sarita Vihar, New Delhi - 110044

CALENDER OF FESTIVALS & RITUALS 2003-04

2003

2nd April	Wednesday	Navreh (New Year)
14th April	Monday	Baisakhi
28th April	Monday	Janmadivas Jayanti HH Ishwarswaroop Swami Lakshman Joo Maharaj
7th May	Wednesday	Lingapratishtha Amriteshwar temple Mohinder Nagar
9th May	Friday	Varsh HH Ishwarswaroop Swami Lakshman Joo Maharaj
12th May	Monday	Lingapratishtha Amriteshwar temple, Ishber, Guptganga
13th July	Sunday	Sri Guru Purnima
12th August	Tuesday	Shravana Purnima
19th August	August	Janma Ashtami
12th Sept.	Friday	Pitrapaksh Jagh Swami Mehtab Kak Ji Maharaj
13th Sept.	Saturday	Pitrapakh Jagh Sushri Sharika Devi Ji
14th Sept.	Sunday	(Nirvan Jaayanti) Yearly Jagh of HH Ishwarswaroop Swami Lakshman Joo Maharaj
24th Sept.	Wednesday	Pitrapaksh Jagh Swami Ramji Maharaj
28th October	Tuesday	Janma Jayanti Swami Mehtab Kak Ji Maharaj
25th Nov.	Tuesday	Janma Jayanti Sushri Sharika Devi Ji
20th Dec.	Saturday	Janma Jayanti Swami Ramji Maharaj

2004

20th January	Tuesday	Annual Jagh Swami Ramji Maharaj & Shiva Chaturdashi
8th Feb.	Sunday	Annual Jagh Sushri Sharika Devi Ji
18th Feb.	Wednesday	Annual Jagh Sushri Sharika Devi Ji
18th Feb.	Wednesday	Maha Shivaratri
21st Feb.	Saturday	Annual Jagh Swami Mehtab Kak Ji Maharaj

Published for General Information

(I. K. Raina)

Trustee / Secretary
Ishwar Ashram Trust



ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMILAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Srinagar Ashram:

Ishber Nishat.

P.O. Brain,

Srinagar (Kashmir)-190 021

Tel. : 0194-2461657

Jammu Ashram:

2, Mohinder Nagar,

Canal Road,

Jammu (Tawi)-180 016

Tel. : 0191-2501199, 2555755

Delhi Ashram:

R-5, Pocket 'D',

Sarita Vihar,

New Delhi-110 044

Tel. : 011-26958308, 26974977

(1)

No.:IAT/1082/cont./03

Jammu

1st May, 2003

Whole of the Guru-parivar was shocked to learn about the sad demise of Shri Manohar Nath Ji Tikoo, who was known to his dear ones and the friends as Mana Kak ji, on the 26th of April, 2003.

The Guru-parivar assembled on 29th April, 2003 and prayed to Gurudev ji Maharaj to shower bliss to the departed soul and lead it to the region of Light to which it has just entered.

The gathering also prayed to Gurudev to give enough courage to Smt. Padmani ji and her family members to bear this great loss.

Sd/-

(B. N. Koul)

Trustee

Ishwar Ashram Trust

(2)

No.:IAT/1054/cont./02

Jammu

29th December, 2002

Whole of the Guru-parivar was shocked to learn about the sad demise of Smt. Prabhavati Kaul, M/o S/s Chaman Lal Kaul & Kanaiya Lal Kaul (Chandigarh) who was an ardent devotee of Gurudev Ji Maharaj.

A prayer was made to the Guru Maharaj for showering Bliss to the departed soul & lead to the region of Light it has just entered & Bostow

enough strength to the bereaved family to bear this great loss.

Sd/-

(B. N. Koul)

Trustee

Ishwar Ashram Trust

(3)

Jammu

No.:IAT/1083/03

18th May, 2003

Whole of the Guru Parivar was shocked to learn about the sudden and sad demise of Shri Jawahar Lal Bakshi, brother-in-law of Shrimati Kishana Ji Razdan (W/o Shri Pran Nath Razdan, one of Guru Brothers).

The Parivar prayed to Gurudev Swami Ishwar Swaroop Ji Maharaj to Shower Bliss to the departed soul and lead it to the region of Light it has just entered; also prayed for giving enough courage to bear this great loss to the Razdan couple as also to the wife and children of Late Shri J. L. Bakshi.

(B. L. Koul)

Trustee

Ishwar Ashram Trust

(4)

Jammu

No.:IAT/1095/cont./03

8th June, 2003

Whole of the Guru-parivar was shocked to learn about the sad demise of the father of Shri Makhan Lal Hangloo a few days back after came ailment. The deceased like his family members was a very humble and noble soul.

The gathering prayed to Gurudev Ishwar Swaroop Maharaj to bestow peace to the departed soul and also lead it to the region of Light and salvation into which it has just entered, as also give enough courage to Sh. Makhan Lal ji and his other family members to bear this great loss.

It was desired that these sentiments be conveyed to the concerned.

(B. N. Koul)

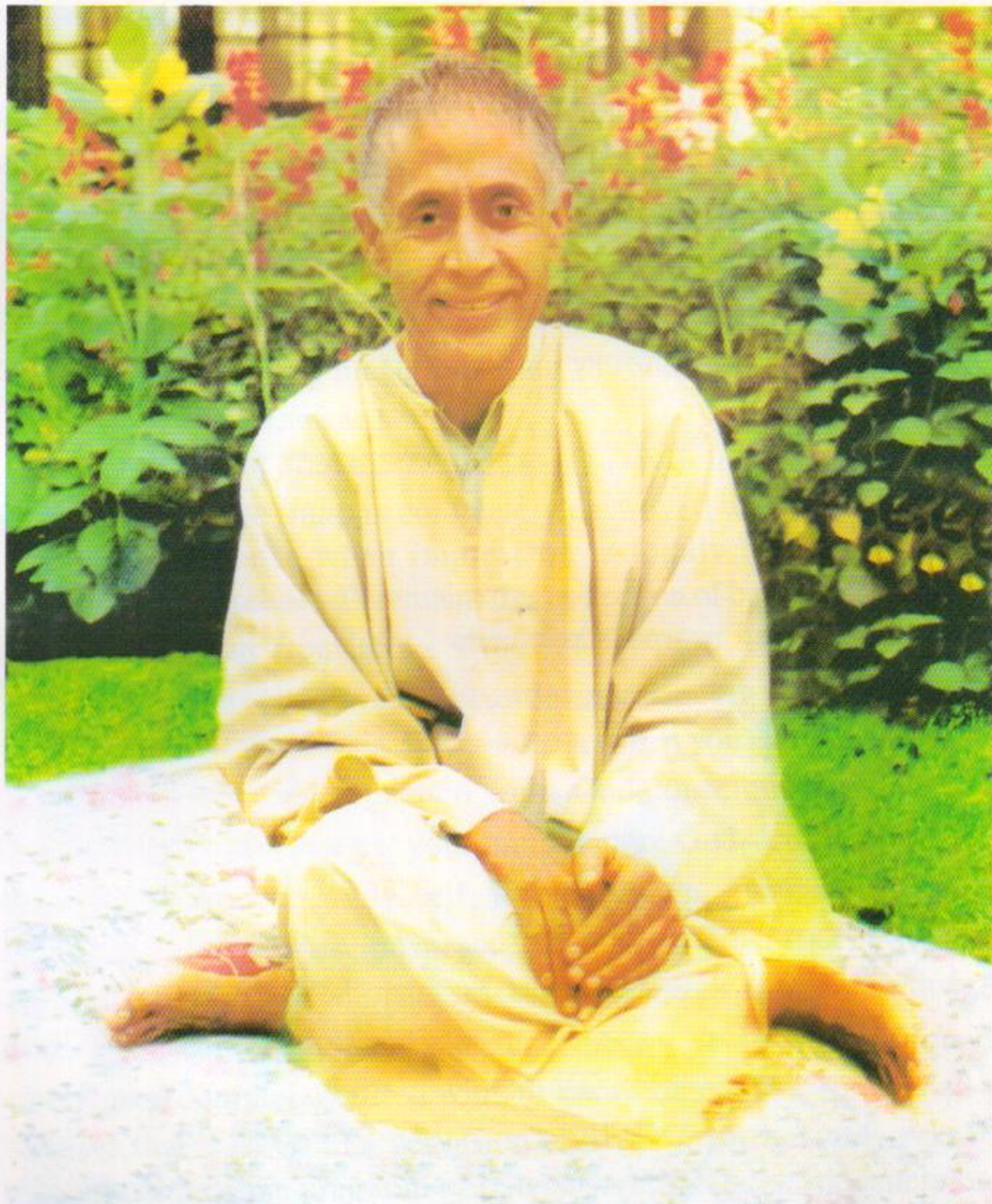
Trustee

Ishwar Ashram Trust

N.B.: Similar condolence meetings were held on the stipulated date at Srinagar and Delhi Ashrams also and two minutes silence was observed for the upliftment of departed souls. May Sadguru Maharaj bestow eternal peace and relieve them from the pangs of life and death.

(40)

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज



आविर्भावदिवस
9-5-1907

महासमाधिदिवस
27-9-1991